"माँ ! मैं क्या करूँ ? कुछ नहीं सूझता। कैसे उसे फाँसी पर चढ़वा दूँ। मैं इस्तीफा दे दूँगा।"

"कुमार ! यही न, कि वह तुम्हारा सगा भाई है ? पर इसमें क्या ? सामाजिक भावनाओं की सीमा पार कर अपने हृदयस्थ ईश्वर से पूछो। माँ, बाप, भाई, बहिन, सगे-सम्बन्धी ये सब नाते ताक पर रख कर अपना कर्त्तव्य पालन करो। सामने उपस्थित हुए कर्तव्य से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं—यही कहा था वासुदेव ने अर्जुन से। कर्म और अकर्म का भार तुम अपने सिर क्यों ढोते हो ? वह पथ-भ्रष्ट है। उसे सजा होगी ही। तुम केवल निमित्त-मात्र हो। 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् धर्म सस्थापनार्थाय' ईश्वर रोज अवतार लेता है। वही तुम हो—ईश्वर के प्रतिनिधि ! जाओ, मोह का बन्धन त्यागो। त्याग ही मुक्ति है। 'न ज्ञानेन, न धनेन, न इज्यया,त्यागेन् एकेन अमृतत्व मानुष।' यही गीता का सार है। तुम फलाफल की चिन्ता किए बिना अपना कर्त्तव्य करते जाओ, करते जाओ। जाओ !"

—यह है एक माँ का उद्गार, जीवन के दो भिन्न मार्गों पर चलने वाले अपने दो बेटों के प्रति जो कथा के मुख्य पात्र हैं।

ऐसे कितने ही विचारात्मक, प्रेरणात्मक तथा मार्ग-दर्शक स्रोत इस पुस्तक से प्रवाहित हो रहे हैं।

महायुद्ध के आरम्भ का समय था। युद्ध की आँच शहरों की तरह गाँवों को भी उस समय महसूस हो रही थी। खाने-पीने की चीजों के मूल्य में एकदम वृद्धि हो जाने के कारण शहर से लेकर गाँव तक हर आदमी परेशान हो उठा था।

किसी भी प्रकार का राजनैतिक आन्दोलन उस समय जोर पर न था। सरकारी लोग रंगरूट भरती करने के लिए गाँव में आते थे और किसानों के जवान लड़कों को पलटन में भरती करने के लिए ले जाते थे। उस समय किसी को लड़ाई की भयानकता की कोई कल्पना नहीं थी। पेट-भर भोजन प्राप्त करना कठिन हो रहा था, इसलिए इस आशा से कि लड़ाई पर जाने से खूब पैसे मिलेंगे और उन्हें घर भेज सकेंगे। किसानों के जवान लड़के हाथ का हल छोड़कर, कंधे पर बन्दूक लिए लड़ाई पर जा रहे थे।

गाँवों में आदमियों की कमी महसूस हो रही थी। पैसे की कमी पहले से ही थी। उद्योग-धंधा कुछ था नहीं। खेती से पेट भरता नहीं था। गाँव वाले जिस तरह लड़ाई पर जाते थे उसी तरह इस आशा से कि शहर में कोई नौकरी मिल जाएगी, बम्बई भी जा रहे थे। इन जाने वालों के ध्यान में यह बात जरूर आई कि जिन्हें वे पीछे गाँव में छोड़ रहे हैं, उनकी उपेक्षा हो रही है। पर उसका प्रतिकार करने का उपाय किसी के हाथ में न था।

ऐसे संकट कालखंड की दुहाई में छटपटाते हुए, परिवारों को

एकत्रित करके उनके उदर-निर्वाह का साधन उत्पन्न करने के उपाय खोजना शुरू किया ।

एक समय था जब शरणगांव के लोग गांव में ही अपने कपड़े बना लिया करते थे । परन्तु मिलों के खुल जाने से शरणगांव के चरखे और करघे बन्द पड़ गए । स्वदेशी आंदोलनों के कारण मिलों को बल मिला, पर स्वदेशी का आंदोलन करने वालों को उस समय यह महसूस नहीं हुआ था कि उनके आंदोलन के कारण गांव के गरीब जुलाहों के मुंह से उनकी रोटी छीन ली गई ।

ऐसे ही समय दुर्गाबाई को यह परिस्थिति महसूस हुई । कबाड़खाने में पड़े हुए चरखे बाहर निकालकर उसने उन्हें पुनः शुरू कर दिया । गांव में जो वृद्ध और वृद्धायें बची थीं, उन्हें करघे और चरखे चलाने के लिए प्रोत्साहित किया ।

वह धनी नहीं थी, मतलब यह कि आज धनी नहीं थी । एक समय ऐसा था कि उसके घर दस-बारह अतिथि रोज भोजन किया करते थे । किसान लोग बोनी के समय बीज खरीदने के लिए उसके घर से हर साल रुपये उधार ले जाते थे । वस्त्रहीनों को कपड़े देने के लिए दुर्गा का पति, शंकर चारुदत्त की तरह अपने शरीर तक के कपड़े दे देता था ।

चारुदत्त के समान ही अमर्यादित उदारता के कारण वह दरिद्री हो गया । उसी से कर्ज लेकर पोषित हुए उसके अनेक पड़ोसी आज धनी हो बैठे थे और अब उनके दरवाजे जाकर कर्ज लेने का मौका शंकर पर आ गया था । जिन पर उसने उपकार किये थे, वही उस पर अब उलट पड़े थे । यह देखकर शंकर सोचने लगा—

उसके सामने दो रास्ते हैं—दरिद्रता से संतोष मानकर कृतघ्न हुए अपने पड़ोसियों की लातें खाते रहना अथवा कृतघ्न का बदला लेने के लिए पहले की अपनी वृत्ति छोड़कर प्रत्येक को अच्छा सबक सिखाना ।

उसे दूसरा रास्ता उचित प्रतीत हुआ, परन्तु दुर्गा को वह नहीं जंचा । उन भावुक पति-पत्नी में विरोध का विष फैल गया । दोनों के

जुदा-जुदा हो गए। परन्तु दोनों में तात्कालिक विषमता नहीं
।

"तुम अपनी राह जाओ, मैं अपनी राह जाऊँगा !"—ऐसा कहकर
ने एक-दूसरे को चुनौती दी।

इस समय वे एक किराये के मकान में रहते थे। शंकर, दुर्गा और
ा आठ साल का लड़का मोहन इतना ही उस सुखी-दुखी परिवार
विस्तार था। मोहन बाप का बड़ा लाडला बेटा था। माँ की अपेक्षा
अपने पिता शंकर के साथ ही अधिक रहता था। चूँकि पति की
बदल गयी थी, इसलिए यह देखकर कि इस बदली हुई वृत्ति में
न अपने पिता की शिक्षा में तैयार हो रहा है, दुर्गा को बड़ा दुख
ा था। बाप से उसे दूर करने का उसने जितना संभव था उतना
न किया, पर उसे सफलता न मिली। बल्कि उसके प्रयत्नों का परि-
ा उल्टा हुआ। उस कोमल लड़के के मन में स्वयं अपनी माँ के प्रति
ा उत्पन्न हो गई। पिता का अनुकरण करके वह अपनी माँ को
ड़ समझने लगा। इतना ही नहीं बल्कि चार लोगों के सामने प्रत्यक्ष
नी स्नेहमयी माँ की हँसी उड़ाने से भी वह बाज नहीं आता था। लड़के
ऐसी वृत्ति देखकर, दुर्गा के हृदय को बड़ी वेदनाएँ होतीं। अपना यह
भुलाने के लिए वह गाँव के लड़के और लड़कियाँ एकत्रित करके उन्हें
[illegible]

माल की बिक्री से जो फायदा होता था वह कारखाने में काम करने वालों के परिवार के उदर-पोषण के लिए किस तरह काम आ सकेगा, इसकी उसे बड़ी चिन्ता रहती थी और इसी कारण उसका पति उससे चिढ़ उठा था—इसीलिए दुर्गा गाँव के गरीबों की 'माँ' हो बैठी थी।

रोज वह गीता पर प्रवचन करती। इस प्रवचन के बल पर ही गाँव के लोगों को पहले उसने अपनी ओर आकर्षित किया था। प्रवचन सुनते समय बातियाँ बलने में अकारण समय नष्ट करने की अपेक्षा ऊपर लिखे काम वह श्रोताओं से करवा लेती थी। चरखे चलते रहते, गीता जारी रहता, खिलौने तैयार होते रहते, पापड़ अचार और मुरब्बे बनते रहते। हाथों से ये काम होते रहते और उसी समय सब काम करने वाले कानों से गीता का प्रवचन सुनते रहते। उस कारखाने का यही नियम था।

बचपन से ही उसने संस्कृत का अच्छा अध्ययन करना आरम्भ कर दिया था। उपनिषद् और योगवासिष्ठ जैसे वेदान्त के ग्रंथों का अध्ययन हो जाने के कारण उसका गीता का प्रवचन इतना विद्वत्तापूर्ण, किन्तु सुबोध, सरल और शुद्ध भाषा में सजा होता था कि उसे सुनकर बड़े-बड़े विद्वान् भी दंग रह जाते थे। इसलिए सारा गाँव उसी की ओर खिंच रहा था। [illegible] द्वारा गाँव में शुरू कर दिये गये अत्याचारों के कारण परेशान हुए लोगों के हृदयों पर दुर्गा की ग्राम-सेवा का प्रभाव बिल्कुल निम्न प्रकार से पड़ रहा था।

लक्ष्मणगाँव बम्बई से कोई बहुत दूर नहीं था। किसी समय बड़ी दूर लगने वाली बम्बई रेल के कारण अब बिल्कुल नजदीक हो गई थी। बम्बई के बाजार की [illegible] की भाँति लक्ष्मणगाँव के तंग रास्तों की [illegible] में ट्रैफिक पर रुक कर देखी जाती थी।

बम्बई के [illegible] लक्ष्मणगाँव में देखने वाला एक [illegible] हाथ [illegible] ठेला [illegible] में घूमता रहा था। रास्ते में [illegible] की नजर उस [illegible] पर पड़ी। उसके मुँह से पानी

र आया। जो भी दिखे वह अपना ही है, ऐसी वृत्ति मोहन मे उत्पन्न
गई थी। फलों के ठेले के आसपास लगी भीड़ में से घुसकर, मोहन
ठेले में से दो-चार फल इस तरह से उठा लिये जैसे वे उसी के हों।
सका हाथ पकड़ने की किसी में भी हिम्मत न की। फल-विक्रेता ने
ब उसका हाथ पकड़ा, तब शंकर उस फल-विक्रेता पर एकदम टूट
ड़ा और उसे दो-चार करारे चाँटे जड़ दिये। एकत्रित लोग जोर-जोर
हँसने लगे। यह देखकर बेचारा फलवाला वृद्ध झेंपता हुआ-सा बोला,
मेरे फल जो चुरा लिये उस छोकरे ने!"

"सामोश!" शंकर चिल्ला पड़ा।

"पर मेरे फल....." फलवाला वृद्ध इस तरह कहने की कोशिश कर
हा था कि शंकर फिर ज़ोर से चिल्ला पड़ा—

"तेरे नहीं है, तेरे नहीं हैं।" फिर ज़ोर का कहकहा लगा कर वह
ला—"तेरे फल. " शंकर हँस रहा था। एकत्रित लोग भी उसके
ाथ हँस रहे थे। दयनीय चेहरे से फलवाला सहानुभूति की आशा से
गों की ओर देख रहा था।

"पर मेरे फल.. " वह पुनः बोलने का प्रयत्न करने लगा।

"तेरे नहीं है .." शंकर चिल्लाकर बोला—"तेरे नहीं हैं।" उस
हैं—मेरा लड़का है वह। इस शंकर का लड़का है। शरणगाँव के
स मालिक का लड़का है। यहाँ की हर चीज पर उसका अधिकार है।
मझा? . [illegible]—"ऐसा कहकर, उसने मोहन को अपनी ओर
[illegible]। मोहन फलवाले को मुँह चिढ़ाकर दिखा रहा

भूखों मरते हों उन्हें खिलाने के लिए तुम खुद भूखी मरो। मैंने यह सब करके देख लिया। क्या मैं कृतघ्नों को भोजन दूँ? साँप को अगर दूध भी पिलावें, तो भी जहर को छोड़कर वह हमें और क्या देगा? मुझे काफी तजुरबा हो चुका है। हमारा तुम्हारा संबंध आज से समाप्त हो गया—" दरवाजे की ओर जाते-जाते वह बोला,—"मेरे चले जाने पर तुम्हारा घर भी सुधर जाएगा दुर्गा!"

उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई थके स्वर में दुर्गा बोली, "स्वामी ···!"

"क्या है?" शकर एकदम पीछे मुड़ा और चेहरे पर बनावटी हास्य लाकर बोला—"क्या तुम्हें चिन्ता हो गई कि मैं कैसे जाऊँगा? सफर कैसे करूँगा? क्या कुछ रुपये दे रही हो? तो लाओ—दे दो।"

"रुपये?" दुर्गा बोली—"रुपये कहाँ से आए मेरे पास?"

इतनी देर तक-एक शब्द भी न बोलने वाला मोहन एकदम आगे बढ़कर बोला—"नहीं हैं रुपये? फिर वहाँ वह क्या रखा है?"—देवघर की ओर अगुली दिखाकर, उसने बाप को इशारा किया।

"अच्छा, यह बात है?" शकर देवघर की ओर लपकता हुआ बोला—"देवघर को तिजोरी बना लिया है तुमने! आँ?"

"ठहरो!" दुर्गा उसे रोकती हुई बोली—"अभी तुम बाहर से आए हो। तुमने पैर नहीं धोये हैं। बिना पैर धोये देवघर के पास मत जाओ। वह देव का प्रसाद है। कुछ दिनों में जो जन्म लेने वाला है, उसके लिए देव के नाम से उन्हें अलग रख दिया है।"

"बच्चा देने वाला देव क्या तुम्हें रुपये नहीं देगा?" ऐसा कह कर, उसने देवघर के नीचे रखी रेशमी थैली खींच कर बाहर निकाली। दुर्गा उस थैली को छीनने के लिए आगे बढ़ रही थी कि इसी समय मोहन ने उसे रोक लिया। शकर ने थैली से सब रुपये निकाल लिये और खाली थैली को एक तरफ फेंक कर बोला—"चल मोहन।"

[illegible] हाथ फैलाकर दुर्गा बोली—"मोहन बेटा, इधर आ। मेरी

के चरणों पर चरण रखकर, बेटा बाप के रास्ते लग गया है।"

"और तुम पुण्य के मार्ग पर चढ़ रही रहो?"—शंकर बोला—यह रोज जो गीता हो रही है, यही क्या पुण्य है? यह चरखा, यह ग्राम-सेवा यह समता का उपदेश—यही है न, तुम्हारे पुण्य का मार्ग? दुनिया लातें मारे, दुनिया गरदन मरोड़े और हम औरतों की तरह बैठे सिर्फ आँसू बहाते रहें? सारी दुनिया हमें तंग करे और हम चुपचाप बरदाश्त कर लें? क्यों? तो इसलिए कि लोग हमें सहनशील कहें? यह नहीं हो सकेगा दुर्गा। शंकर से भी नहीं हो सकेगा और उसके लड़के से भी नहीं हो सकेगा।"

"मेरा भाग्य!" दुर्गा गंभीरता से बोली, "सारा गाँव मेरी बात मानता है, पर मेरे ही घर मेरी कोई नहीं सुनता।"

"तुम्हारा सुनना क्या है?" क्रोध से तिलमिलाकर शंकर ने पूछा—"क्या तुम्हारा उपदेश? तुम्हारा कौन सा उपदेश? हम क्यों सुनें? जब भी हम घर आते हैं कि तुम्हारी गीता और चरखा शुरू हो जाता है। वही-वही हमेशा सुनकर हमारा सिर पक गया है। अब अपने पास ही रखो अपना उपदेश। आग लगे तुम्हारे घर को और तुम्हारे उपदेश को। चल रे मोहन—" ऐसा कहकर, उसने नीचे पड़े हुए मोहन को झटका देकर उठाया।

"कहाँ जाओगे?"—दुर्गा ने बड़ी आत्मीयता से पूछा।

"जहाँ राह मिलेगी वहाँ।" शंकर बेफिक्री से बोला—"जहाँ तुम्हारी यह भुनभुन मुझे रोज-रोज सुनने को नहीं मिलेगी वहाँ, जहाँ मैं और मेरा मोहन, दोनों ऐशो-आराम में लोटते रहेंगे, वहाँ।"

"मतलब?" दुर्गा बोली।

"मतलब-वतलब कुछ नहीं"—शंकर बरस पड़ा—"हम ये चले।"

"और मैं?" करुण हो शंकर की ओर देखते हुए दुर्गा ने पूछा।

"तुम?"—शंकर मोहन का हाथ पकड़े घर से बाहर निकलता हुआ बोला—"तुम अपना गाँव सुधारो। लोगों को उपदेश दो। जो

भूखो मरते हो उन्हें खिलाने के लिए तुम खुद भूखो मरो। मैंने यह सब करके देख लिया। क्या मैं कृतघ्नों को भोजन दूँ? साँप को अगर दूध भी पिलावें, तो भी जहर को छोड़कर वह हमें और क्या देगा? मुझे काफी तजुरबा हो चुका है। हमारा तुम्हारा संबंध आज से समाप्त हो गया—" दरवाजे की ओर जाते-जाते वह बोला,—"मेरे चले जाने पर तुम्हारा घर भी सुधर जाएगा दुर्गा!"

उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई थके स्वर में दुर्गा बोली, "स्वामी···!"

"क्या है?" शकर एकदम पीछे मुड़ा और चेहरे पर बनावटी हास्य लाकर बोला।—"क्या तुम्हें चिन्ता हो गई कि मैं कैसे जाऊँगा? सफर कैसे करूँगा? क्या कुछ रुपये दे रही हो? तो लाओ—दे दो।"

"रुपये?" दुर्गा बोली—"रुपये कहाँ से आए मेरे पास?"

इतनी देर तक-एक शब्द भी न बोलने वाला मोहन एकदम आगे बढ़कर बोला—"नहीं है रुपये? फिर वहाँ वह क्या रखा है?"—देवघर की ओर अगुली दिखाकर उसने बाप को इशारा किया।

"अच्छा, यह बात है?" शकर देवघर की ओर लपकता हुआ बोला—"देवघर को तिजोरी बना लिया है तुमने! आँ?"

"ठहरो!" दुर्गा उसे रोकती हुई बोली—"अभी तुम बाहर से आए हो। तुमने पैर नहीं धोये है। बिना पैर धोये देवघर के पास मत जाओ। वह देव का प्रसाद है। कुछ दिनों में जो जन्म लेने वाला है, उसके लिए देव के नाम से उन्हें अलग रख दिया है।"

"बच्चा देने वाला देव क्या तुम्हें रुपये नहीं देगा?" ऐसा कह कर, उसने देवघर के नीचे रखी रेशमी थैली खींच कर बाहर निकाली। दुर्गा उस थैली को छीनने के लिए आगे बढ़ रही थी कि इसी समय मोहन ने उसे रोक लिया। शकर ने थैली में सब रुपये निकाल लिये और खाली थैली को एक तरफ फेंक कर बोला—"चल मोहन।"

दोनों हाथ फैलाकर दुर्गा बोली—"मोहन बेटा, इधर आ। मेरी सुन, तू मत जा—"

उसने मोहन को अपनी ओर खींचने की कोशिश की, पर
को तिरस्कार कर मोहन बाप के साथ [illegible] गया। शंकर
“देखा, अब हो गया यकीन। मोहन मेरा लड़का है [illegible]
समझ गयी अब? क्या मोहन बनकर यह यहाँ [illegible]
कमाई-धंधा करेगा। दुनिया में नाम कमायेगा। चल रे मोहन

पुन: दुर्गा ने मोहन को पुकारा। बाप के साथ जा रहे
मुड़कर पीछे देखा और माँ का मुँह चिढ़ा दिया। दुर्गा का कले
हो गया। मेरे पेट के जाये को प्रत्यक्ष मेरा पति मुझसे छीन
रहा है - किसी अच्छे काम के लिए नहीं, बल्कि दोनों ही बु
कदम रखने जा रहे हैं। अब दोनों ही अधःपतन के गर्त में जा
इस विचार के मन में आते ही दुर्गा का हृदय फट गया।

दरवाजे में खड़ी होकर वह देख रही थी। दोनों आगे ब
थे। उन्होंने एक बार भी मुड़कर पीछे नहीं देखा। जिस पर उ
से भी अधिक प्रेम किया उसके द्वारा दिखाई गई इस अकृतज्ञ
रता को देखकर, वह निराश हो उठी। वह अपने आपसे बुद
“गये, घर की लक्ष्मी को छोड़कर बाहर की लक्ष्मी खोजने गये!
जाने, उन्हें लक्ष्मी मिलती है या [illegible]।”

वह सारी रात उसने बेचैनी में गुजारी। भविष्य का क्या
विषय के अनेक विचारों से उसका हृदय बोझिल हो उठा था।
मन को संतोष देने का वह प्रयत्न कर रही थी।

जिस समय वह ऐश्वर्य में थी, उस समय की सारी स्मृतियाँ
पट उसकी नजरों के सामने से सरक गया। वह ऐश्वर्य चला ग
गरीबी आ गई थी, परन्तु इस गरीबी में भी उनके पहले कुछ
में बीते थे। एक दूसरे के आँसुओं से आँसू मिलाकर दोनों ने
को संतोष दिया था। यह कहकर कि संतोष मन का होना है,
नहीं, उन्होंने एक दूसरे को धीरज दिया था। पर क्या हुआ
जाने, आगे चलकर शंकर की वृत्ति एकाएक बदल गई।

र गया। सारे गाँव को उससे तकलीफ पहुँचने लगी। दुर्गा की ओर
ख कर गाँव वाले उसे बरदाश्त कर रहे थे। गाँव के गरीबों, अमीरों
था छोटे-बड़े, सभी के प्रेम का आधार दुर्गा थी। अपने इस आधार को
ई दुख न पहुँचे इसलिए गाँव वाले हमेशा शंकर को क्षमा कर देते
। पर दिन-प्रति-दिन उसके अत्याचार बढ़ने लगे। दुर्गा ने हर बार
मन फैलाकर, गिड़गिड़ा कर लोगों की मिन्नत की और उसे अनेक
कटों से बचाया। ऐसे अनेक अपराध शंकर ने गाँव में किये थे कि जिनके
ारण वह कभी का जेल चल दिया होता, परन्तु दुर्गा के प्रति गाँववालों
हृदय में बड़ा आदर होने के कारण ही वह अभी तक जेल के बाहर
ह रहा था।

दुर्गा ने सोचा, आखिर वह कब तक बाहर रहेगा? पहिले भी मेरी
रोज-रोज की भुनभुन से उकता कर वह मुझे धमकी देकर बाहर चले
ाता था। पर थोड़े ही समय में घर पुन: लौट आता था और मुझसे
मझौता कर लेता था।

पर आज उसे शक हुआ। आज उसकी सारी बचत उससे छीनकर
वह ले गया था। इस समय उसके हाथ में रुपये थे। इसलिए उसे लगा
कि अब वह जल्द नहीं लौटेगा। कम-से-कम उसके सब रुपये खर्च होते
तक तो वह वापिस नहीं आएगा।

वह गर्भवती थी। उसके नौ महीने पूरे हो गये थे। घर में दूसरा
कोई नहीं था। उसने जो रुपये बचाकर रखे थे, वे सब उसके पास से
निकल गये थे। दूसरों के पास याचना करने में उसे मरण-प्राय दुख
होता था, लेकिन मौका ऐसा आ गया था कि दूसरे के सामने याचना
का हाथ फैलाए बिना उसे कोई चारा ही न था।

पर याचना भी करे तो आखिर किससे? उसका संबंध था सिर्फ
गरीबों से। अमीरों से वह दूर ही रहती थी। उसने सोचा, क्या मुझे
जाकर गरीबों के सामने याचना का हाथ फैलाना होगा?

उसे लगा जैसे उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। विचारों के

भी देखिए जरा।"

गाने वाला भिखारी भी आगे बढ़ा। किसी ने मोहन को एक पैसा दिया। मोहन ने उस एक पैसे के दो पैसे करके दिखाए। मुसाफिरों का ध्यान उसकी ओर खिंच गया। किसी ने उसे पैसा दिया, किसी ने एकन्नी दी, किसी चवन्नी तो किसी ने अठन्नी। एक ने तो उसे रुपया दिया था, उसकी जेब का मनीबैग निश्चित ही उसके घर तक न पहुँचा होगा।

मोहन हाथ की सफाई दिखा रहा था और उन्हें दिखाते हुए न जाने कितने लोगों के मनीबैग अनजाने उसकी जेब में पहुँच चुके थे।

इसी समय कोई आगे बढ़ा। उसके कन्धे पर पैर रखकर शंकर ने

उतरने की कोशिश की। फिर क्या था ? दोनों मे लडाई होने लगी। दोनो मारपीट करने लगे। डिब्बे मे एकदम कोहराम मच गया। मोहन ने जाकर खतरे की जंजीर खीच दी। गाडी खडी हो गई। उसके रुकते ही मोहन खिडकी मे से बाहर कूद पडा और अंधेरे मे गायब हो गया।

"लडका भागा, लडका भागा।" शोर होने लगा। इसी समय गार्ड साहब भी डिब्बे मे आ पहुंचे। "कहाँ गया मेरा बेटा ?" कहता हुआ शकर नीचे उतरने लगा। तभी गार्ड ने रोका। "पहले यह बता की जंजीर किसने खींची ?" गार्ड यह पूछ ही रहा था कि उसे धक्का देकर शंकर भी गाडी से नीचे कूदकर अंधेरे में विलुप्त हो गया।

जजीर किसने खीची, इसका कोई पता ही नही लग रहा था। गार्ड भी आखिर क्या करता ? बहुत मुसाफिरों कि जेबों से मनीबेग उडाकर लडका भाग गया था। शकर और उस लडके का पिता-पुत्र का नाता होगा, यह अभी तक किसी ने नही सोचा था।

गाडी लेट न हो, इसलिए गार्ड ने गाडी छोडने का हुक्म दे दिया। गार्ड ने लोगो से कहा कि जिनके मनीबेग चोरी हो गए हैं, वे लोग बम्बई स्टेशन पर पुलिस मे रिपोर्ट करें। इतना कहकर गार्ड चल दिया और गाडी आगे बढ गई।

अंधेरे मे उतरा हुआ मोहन कहाँ गया, इसका शकर को कुछ समय तक पता ही न लग रहा था। मोहन ने ही शकर को खोज निकाला। जब दोनो मिले तो जो घटना हुई उसके लिए पेट पकड कर खूब हँसे।

बम्बई वहाँ से विशेष दूर नही थी, फिर भी बम्बई तक पैदल जाना सम्भव नही था। सुबह होने तक पता लगाते-लगाते वे पक्की सडक पर पहुँच गये और उसके किनारे एक वृक्ष के तले आराम करने लगे। आगे क्या किया जाय इस विचार में दोनो ही सो गये थे। इसी समय सामने से आ रही एक मोटर उन्हें दिखाई दी। दोनों ने ही एक निश्चय किया।

मोटर का वहाँ आना और मोहन का उसके सामने धडाम से गिरना, दोनों बातें एक साथ ही हुई। मोटर वाले ने एकदम ब्रेक लगाकर गाडी

रोक दी और गाड़ी से कूदकर लड़के को देखने के [illegible]

मोटरवाले के यह पूछते ही कि लड़के को चोट कहाँ लगी है, कितनी लगी है, शंकर उस पर चिल्ला उठा --"यह पूछते हो अब ? तुम्हारी आँखें क्या फूट गई थीं ? इतना बड़ा लड़का तुम्हें दिखा नहीं ? बड़े घमंडी होते हो तुम मोटर वाले ! अपनी मस्ती में तुम्हें किसी के प्राणों की परवाह नहीं होती। अपनी जल्दी में तुम न जाने कितने राहगीरों को बेमौत मार डालते हो ?"

"भैया, कृपा करो--" मोटर वाले ने जेब से मनीबेग निकाला और पाँच रुपये का एक नोट शंकर को थमाता हुआ बोला "ये रख लो और लड़के का इलाज करो। यहाँ कोई डाक्टर मिल ही जायगा तुम्हें। लड़के को अधिक चोट नहीं आई। मुझे बहुत जल्दी बम्बई पहुँचना है।" ऐसा कहकर, नोट उसके हाथ में रखकर, वह गाड़ी में बैठ ही रहा था कि उसे एक झटका देकर शंकर ने बाहर खींचा और कहा--"बम्बई जा रहा हूँ, कहने को शर्म नहीं आई तुम्हें ? इन्सान की जान को क्या तुमने कीड़े-मकोड़े की जान समझ लिया है ? मैं कहाँ जाऊँगा डाक्टर खोजने ? इस लड़के को क्या अपने कंधे पर लादकर ले जाऊँ ? उठाओ उसे और रखो अपनी मोटर में !"

बेचारा मोटर वाला भला आदमी था। दूसरा कोई होता तो पहिले तो मोटर ही न रोकता, परन्तु जब ठहर ही गया था तो आगामी झंझटों से बचने के लिए उसने मोहन को चुपचाप उठाकर अपनी गाड़ी में रखा। कूदकर शंकर भी गाड़ी में बैठा और गाड़ी स्टार्ट हुई।

गाड़ी में बैठा हुआ शंकर लगातार मोटर वालों के पुरखों का बखान कर रहा था। जिस मनुष्य ने सबसे पहिले मोटर का शोध लगाया उस मनुष्य से शुरू करके मोटर लेकर आने वाले इस मनुष्य के बाप-दादाओं तक का बखान करके भी उसे संतोष नहीं हो रहा था।

शंकर की बकवास चल रही थी। इसी बीच मोटर वाले की नजर अपने सामने वाले शीशे पर पड़ी और उसे लगा जैसे एक चमकता हुआ

छुरा उसकी गर्दन पर लटक रहा है। वह घबरा उठा। एकदम ब्रेक लगाकर उसने गाड़ी रोकी। शकर ने एक हाथ से उसकी गर्दन पकड़ी और दूसरे हाथ से उस पर छुरा ताना। मोहन झट-से कूदकर आगे बढ़ा और मोटर वाले की जेबो से सारी चीज उसने निकाल ली। दोनों ने मिलकर उसके मुँह मे कपड़ा ठूँसा और उसे बाँध दिया। इसके बाद दोनो गाड़ी मे से कूद पड़े और जगल मे घुस कर चपत हो गए।

जब वे जुहू के रास्ते पर आए उस समय झुटपुटा हो गया था। शकर पहिले उस तरफ कभी न गया था। इससे पहिले यद्यपि दो-चार बार वह बम्बई आ चुका था, फिर भी बम्बई के आस-पास के भाग की उसे पर्याप्त जानकारी नही थी। उन्होंने यह तय किया था कि सीधी सड़क से न जाकर आड़े-टेढ़े रास्ते से जायेंगे। इसलिए वे सीधा रास्ता छोड़कर, आड़े-टेढ़े मार्ग से होते हुए जुहू के किनारे जा पहुँचे थे। सुबह हो गई थी। वहाँ की तबूनुमा झोपड़ियों के लोग जाग उठे थे। समुद्र-स्नान के शौकीन अपने कपड़े किनारे पर रख, समुद्र मे तैरने घुस रहे थे। कोई पैदल ही घूम रहे थे। कोई घोड़े पर घूम रहे थे। कोई दौड़ रहे थे। उन लोगों की वह अकारण दौड़-धूप देखकर पिता-पुत्र दोनों को आश्चर्य हुआ। गाँव मे ऐसा दृश्य कभी दिखाई नही देता था। बिना काम के गाँवो मे कोई मनुष्य कहीं न जाता था। इसलिए यहाँ की यह व्यर्थ हो रही भाग-दौड़ पर उन्हें आश्चर्य हो रहा था। किनारे पर रखे कपड़ो पर मोहन की नजर पड़ी। एक जगह बड़े आदमी के कपड़े रखे थे और उससे थोड़ी ही दूर एक लड़के के कपड़े रखे थे। वह आदमी और लड़का दोनो शायद समुद्र मे तैर रहे थे। उन कपड़ो को देखते ही मोहन ने शकर को आँख से इशारा किया।

शंकर ने इशारे से ही मोहन के इशारे का उत्तर दिया। मोहन किनारे पर गया। उसने उन कपड़ो को उस तरह समेटा जैसे वे उसी के हो और उन्हें लेकर शकर के पास आया। दोनों शान से घूमते हुए नारियल के पेड़ों के पास पहुँचे। अभी तक पूरी सुबह नहीं हुई थी।

कुछ-कुछ अंधेरा ही था। नारियलों की आड़ में जाकर, दोनों ने कपड़े बदले। पुराने कपड़ों की गठरी बनाकर उन्होंने उसे दूर फेंक दिया।

"श्रीगणेश तो बड़ा अच्छा हुआ है।" शंकर बोला—"एक मुतनी का टुकड़ा भी न लेकर हम घर से निकल पड़े थे, पर एक ही रात में हमारे पास इतने रुपये हो गये कि साल-भर तक बम्बई में हम ऐशो-आराम से रह सकते हैं। किसी को कोई पता न लगेगा"—मोहन की पीठ ठोकता हुआ शंकर बोला—"इसमें शक नहीं, तुम मेरे सच्चे लड़के हो। आज तुमने बड़े अच्छे ढंग से सब काम किये। अपनी जिम्मेदारी पर ही आज तुम इतने काम करके दिखा सके। मैं निश्चिन्त हो उठा। अब बम्बई जीतना मेरे बायें हाथ का खेल है।"

मोहन सिर्फ हँस रहा था। वह काम करने वाला लड़का था—बक-बक करना उसे पसंद न था। जितना कम वह बोलता था उतना ही अधिक बोलने की शंकर की आदत थी। मोहन बोला—"डबरे में से समुद्र में जा पहुँचे हैं हम। यहाँ दूर तक नजर रखनी होगी। नाराज न होना पिताजी! एक बात ख्याल रखिए कि यहाँ हमें अपने मुँह पर ताला लगाकर रखना होगा।"

'सच है। सच है।"—शंकर बोला—'मुझ पर हुकूमत चलाने का अधिकार आज तुम्हें मिल गया है, बेटा! तुम्हारी मा बार-बार कहती है न—बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्—"

अब मा का नाम भी मत लीजिए।"—मोहन बोला, "अब एक ही बात —बंबई—।"

"और बंबई की मालिकी।"—शंकर सीना तानकर बोला—"हरणगाव जैसे छोटे-से गांव में जो आतंक जमाया था जो शान दिखाई थी, वही अब इस विशाल नगरी में दिखाना है—"

मोहन सिर्फ हँस रहा था। दोनों ही इस शान से चलने लगे जैसे जुहू पर घूमने आये हों।

सबेरा हुआ। दुर्गा नित्य की भाँति गृह-कार्य में लग गयी। उन दोनों का कहीं पता नहीं था। अभी भी उसे आशा थी। उसे चिन्ता थी सिर्फ मोहन की। इससे पहले शंकर जब-जब भी नाराज होकर घर से बाहर चला गया था, उस समय वह मोहन को अपने साथ लेकर नहीं गया था। मोहन को वह पैदल ले गया होगा, चलते-चलते रास्ते में मोहन थक गया होगा, उसे खाने को कुछ मिला होगा या नहीं। इस चिन्ता से उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था।

दोपहर हुई। स्नान के पश्चात उसने नित्य की भाँति ठाकुरजी का पूजन किया। ठाकुरजी को भोग लगाया और भोग की वही थाली अपने पीढे के सामने रख वह खाना शुरू कर रही थी कि किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी।

'दोनों आ गए शायद।'—कहकर उसने दरवाजा खोला सामने का दृश्य देखकर उसका कलेजा धक हो गया। घर का मालिक अदालत का चपरासी लेकर घर का कब्जा लेने आया था।

"क्या है?" —उसने डरते-डरते पूछा —"क्या कुड़की और जब्ती लेकर आये हो?"

"हाँ, हाँ! कुड़की और जब्ती के वारट हैं।"—मालिक बोला—"हम अब और कहाँ तक राह देखें? कितने वादे सुनें? तुम्हारा पति हमें मनमानी धमकियाँ देता है। घर हमारा है और शान वह दिखाता है। इतने दिनों तक ठहरा रहा। उसे बहुत समझाकर बताया। तुम्हारी तरफ देखकर चुप रहा, पर अब हद हो गई।"

"क्या आप अभी कुछ दिन और नहीं रुक सकेंगे ?"—उसने बड़ी दयनीयता से पूछा ।

"अब !" मालिक बोला—"अब तो बिल्कुल नहीं रुक सकता। आज ही फैसला होगा । शंकर को मालूम हो गया था कि हमने उसकी और कुड़की के वारंट प्राप्त कर लिए हैं। अब वह लड़के को लेकर फरार हो गया है । किराया मिलने की तो अब कोई आशा ही नहीं। कम-से-कम घर पर कब्जा ही मिल जाए तो वही बहुत है ।"

उसने नौकरों को हुक्म दिया कि घर का सारा सामान बाहर निकालो और घर अपने कब्जे में ले लो ।

दुर्गा ने चारों ओर देखा । उसे लगा जैसे उस पर आसमान टूट पड़ा हो । यह देखकर कि मालिक के नौकर देवघर की ओर बढ़ रहे हैं, वह दौड़ती हुई आगे बढ़ी और बोली—"मेरे ठाकुरजी ।"

"अच्छा, अच्छा !" मालिक बोला—"उसे वे ठाकुरजी की मूर्तियाँ उठा लेने दो । हमारे वे किस काम की । उन मूर्तियों के आखिर दाम भी क्या मिलेंगे हमें ?"

ठाकुरजी को उठाकर उसने उन्हें एक झोले में रखा और झोला लिए घर से बाहर निकलने के लिए वह दरवाजे पर आई । मालिक के आदमी चरखे और सीने की मशीनें उठाने में लगे थे। यह देखकर वह बोली—"ये चीजें मेरी नहीं दूसरों की हैं ।"

"कौन-कौन सी चीजें किन-किन की हैं उसकी एक सूची बना दो ।" मालिक बोला - "और उन्हें खबर भेज दो कि अपनी-अपनी चीजें यहाँ से उठाकर ले जाएं ।"

हाथ का झोला नीचे रखकर दुर्गा ने आ मारी खोली और उसमें से कागज और पेंसिल निकाल कर आवश्यक सूची तैयार करके मालिक को थमा दी ।

सारे घर पर उसने एक बार फिर निगाह दौड़ाई । पुरानी स्मृतियों की छायाएँ उसकी नजरों के सामने आ-जा रही थीं । एक समय यह

घर उसकी मालिकी का था। आगे वह बिक गया। उसे अपने ही घर में किरायेदार की हैसियत से रहने का जब प्रसग आया, तब उसके हृदय को बडी तीव्र यातनाएँ हुई। उन यातनाओं को भुला देने के लिए उसने गाँव के लोगों की सेवा करना आरभ किया। उस समय से लेकर आज तक की घटनाएँ उसकी नजरों के सामने से सिनेमा की रील की तरह सरक रही थी। आँसुओ से भरी आँखो के सामने उसे वे घटनाएँ स्पष्ट दिख रही थी।

उसने घर के बाहर कदम रखा ही था कि नित्य की भाँति पहली महिला आई। दुर्गा को सोन्दा लिए बाहर जाते देख वह आश्चर्यचकित हो गयी।

चेहरे पर जबरदस्ती हास्य लाकर दुर्गा बोली—"मैं अब गाँव छोडकर जा रही हूँ। हमारा आश्रम आज से बन्द हो गया।"

"क्यो ?" उस महिला ने पूछा। दुर्गा ने घर की ओर निगाह फेकी। भीतर का सारा सामान बाहर निकाला जा रहा था। वह महिला समझ गयी। वह दृश्य देखकर उससे भी सिसकी नही रोकी गई। मन पक्का करके दुर्गा बोली "मैंने उनसे कह दिया है कि वे तुम लोगो की चीजे तुम्हे दे दे। उन्हे मैंने एक सूची बनाकर दे दी है। तुम अपना चरखा ले जाओ। नर्मदाबाई तथा अन्य महिलाओ से भी कह दो कि वे अपनी-अपनी मशीने, चरखे आदि यहाँ से ले जाएँ।" इतना कहकर, वह मुड पडी और आगे जाने लगी।

एक छोटी-सी लडकी ने आकर एकदम उसका हाथ पकड लिया। वह कुछ पूछे इससे पहले ही दुर्गा उससे बोली—"राधा, आज से तुम्हारा स्कूल बन्द हो गया।"

एक के बाद एक महिलाएँ और बालिकाएँ आने लगी थी, पर दुर्गा ने उनकी ओर मुडकर देखने की कोशिश नहीं की। वह सीधी कदम बढ़ाये लगातार चली जा रही थी। सब की आँखें छलछला उठी थी। हृदय भर आये थे। उसे बिदा देने के लिए आगे बढने की किसी

"सेठ देवलचन्दजी ने।"

"अच्छा ! क्या वे बम्बई के करोड़पति ?"—दुर्गा ने पूछा।

"हाँ, हाँ। उसी धर्मात्मा ने यह कृपा की है, देवी जी।" हाथ धो रहे एक विशाल पेट वाले पण्डित जी ने डकार लेते हुए कहा। "सारी दुनिया जानती है उन्हें। कुछ ही दिन हुए यह खुला है। अब बड़ी सुविधा हो गई है। यहाँ से निकला था—सोचा, देखूँ कैसा भोजन मिलता है? भई वाह, भोजन तो बहुत स्वादिष्ट और भरपूर मिलता है। प्रबन्ध भी कोई बुरा नहीं। पर हाँ, अभी नया-नया मामला है। आगे भी अगर ऐसा ही रहे, तब ठीक है···"

"बड़े उपकार किये हैं सेठजी ने हम सब पर।"—एक दूसरे महाशय बोल उठे।

"अजी इसमें उपकार काहे का ?"—वही विशाल पेट वाला पंडित बोला—"आज तक न जाने कितने लोगों की गर्दन मरोड़ डाली हैं उसने। न जाने कितने घरों को उजाड़ दिया है? चक्र-वृद्धि ब्याज लगा-लगाकर न जाने कितने लोगों की जायदाद निगल गया है वह? यह सब करके आज उसने यदि गरीबों के लिए एक मुठ्ठी-भर अन्न का प्रबंध कर दिया, तो कौनसी बड़ी बात हुई? जैसे वे बड़े पुण्यात्मा हो गए!"

सभी ओर से हँस पड़े। डकार और हँसी एक दूसरी में मिल जाने के कारण जो एक अजीबसी आवाज हुई, उसके कान में पड़ते ही दुर्गा के रोंगटे खड़े हो गए।

"जो निश्चय ठेऊन बैसनो, ग्याला पर बसन्या राम देतो। रे बाप हो, अखंड हरि हरि वदा—त्रिनी सेवाल धर्म दुर्मदा।" कोई अतिथि गा रहा था।

"सच है।"—दुर्गा अपने आप से बोली—"मुफ्त का अन्न, पाप का अन्न! ऐसा अन्न मेरी कोख में जन्म लेने वाले के मुँह में दुनिया का प्रकाश देखने से पहले नहीं जाना चाहिए।"

"क्या कहा, देवी जी ?" प्रबंधक बोला। उसको उत्तर देने के लिए

४

शंकर बम्बई में आकर कुछ अनोखा और अपनी शक्ति के बाहर काम करना चाहता था। पोशाक के जोर पर वह एक विख्यात होटल में घुस पड़ा। मोहन उसके साथ था ही।

दोनों को इसकी कोई कल्पना नहीं थी कि होटल में जाने के बाद *क्या करना पडता है। वहाँ किस तरीके से जाना चाहिए, कैसा बर्ताव* करना चाहिए और जिन चीजों की जरूरत है उन्हें किस तरह मँगाना चाहिए, इसकी उन्हें कोई कल्पना नहीं थी।

होटल में प्रवेश करते ही वेटर ने उन्हें एक मेज के पास ले जाकर बिठा दिया। यह उनकी पोशाक का प्रभाव था। वेटर ने 'मेनू' का कागज शंकर के हाथ में दिया। शंकर ने उसे फेंक दिया। वह बोला — "लाओ, जो भी तुम्हारे पास हो खाने को यहाँ मेज पर लाओ। जाओ।"

बेचारा वेटर भी आखिर लाता तो क्या लाता? शंकर की यह हरकत देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गया था। खाने को लाओ, इसका ठीक से कोई अन्दाज न पा सकने के कारण उसने पुनः मेनू का कार्ड उठाकर शंकर को दिया। शंकर ने पुनः वह मेनू फेंक दिया और बोला— "जाओ जी, जो भी हो ले आओ।" बेचारा वेटर अपनी अक्ल पर भरोसा रखकर अपना कर्तव्य बजाने चल दिया।

नृत्य हो रहा था। ऑरकेस्ट्रा बज रहा था। वे दोनों यह नहीं *समझ पा रहे थे कि खाने के समय यह गड़बड़ क्यों हो रही है। बाकी* की मेजें धीरे-धीरे भर रही थी। वेटर एक-एक चीज लाकर मेज पर

विजीटिंग कार्ड था। उसने विजिटिंग कार्ड निकालकर वेटर की तस्तरी में रख दिया। कार्ड देखते ही वेटर सलाम करके जाने लगा। इसी समय मोहन ने तश्तरी में एक अठन्नी डाल दी। वेटर और अधिक खुश हो गया।

कार्ड तश्तरी मे डालने का शंकर का कोई खास उद्देश्य था, यह बात न थी। उसने सोचा था कि कार्ड दूँ। यदि बात जम जायगी तब तो ठीक है और अगर न जमी तो मजाक में उड़ाकर बिल के पैसे दे दूँगा। परन्तु जब उसने देखा कि उस कार्ड से वह जो चाहता था, वही बात हो गई, तब उसे स्वयं बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कार्ड एक विख्यात बैरोनेट का था जिसका इस होटल से बड़ा घनिष्ठ सबंध था। वह कभी-कभी इस होटल मे आया करता था। वेटर यह जानता था। इसलिए उसने बिल चुकाने की फिर कोई बात ही नही की। उसे हिम्मत ही नहीं हुई कि शंकर से बिल के रुपये माँगे।

इधर मोहन ने भी अठन्नी की 'टिप' देकर चालाकी की थी। वैसे होटलों मे वेटरों को 'टिप' दी जाती है, यह मोहन जानता नही था। परन्तु जब वह खा रहा था, उस समय वह ग्राहकों की ओर बड़े ध्यान से देख भी रहा था। उन लोगों का अनुकरण करके ही उसने टिप देने की यह तत्परता दिखाई थी। होटल से बाहर निकलते ही शंकर ने मोहन से कहा—"आखिर तुमने अपनी गाँठ का पैसा दे ही डाला।"

"नही!"—मोहन शरारत भरी हँसी हँसकर बोला—"उस वेटर के जेब की ही अठन्नी थी वह। जब वह हमें परोस रहा था, उसी समय मैंने उसकी जेब पर हाथ साफ करके दो अठन्नियाँ निकाल ली थी। उनमे एक खोटी थी। वह खोटी अठन्नी ही मैंने टिप के रूप में उसे फिर लौटा दी।"

"शाबास बेटा!"—शंकर ने उसकी पीठ ठोकी।

दोनो बेफिक्री से घूम रहे थे। बहुत दूर निकल जाने के बाद सड़क के किनारे उन्हें एक बड़ी इमारत के एक फ्लैट पर 'किराये से देना है', ऐसी तख्ती दिखाई दी। उतनी बेफिक्री से वे उस फ्लैट मे घुस पड़े।

जब वे रसीद लिख रहे थे उस समय मोहन उनके पीछे खड़ा होकर देख रहा था।

रसीद मिल गई। बाकी रुपये भी मिल गये। मैयाजी चल दिये, परन्तु शकर का चेहरा उदास हो गया था। मोहन हँस रहा था।

"हँसता क्यो है बे, गधे ?" शंकर बरस पडा—"यहाँ आते ही अपनी गाँठ से ही पहिले रुपये देने पड़े। यह क्या हँसने की बात है ?"

जेब से एक सोने की घडी निकालकर, धीरे-से पिताजी को दिखाकर पुन उसे अपनी जेब के हवाले करता हुआ मोहन बोला—"मैयाजी की है।"

"शाबास, मेरे शेर।" शकर बोला—"तुम मेरे सच्चे लडके हो।"

पेशगी किराया देने मे यद्यपि यह बचत हो गई थी, फिर भी इससे आगे के खर्च के लिए जेब से पैसे निकाले बिना कोई उपाय नहीं था। उस मकान मे फर्नीचर यद्यपि भरपूर था, फिर भी अन्य आवश्यक सामान ट्रक, बिस्तर, कपड़े आदि खरीदे बिना काम चलने वाला न था।

आगे वह क्या करेगा, इसका भी कोई अदाज अभी शकर के पास न था। अभी सिर्फ केशवलाल ही उसकी नजरो के सामने था। उसे मालूम हुआ था कि केशवलाल बम्बई का सबसे बडा आदमी है और इसीलिए पहला शिकार उसी को वह बनाएगा, ऐसा मन-ही-मन निश्चय कर लिया था। पर वह कहाँ रहता है। वह इतना बड़ा आदमी कैसे बन गया जिस क्षेत्र मे कोई विशेष काम करके वह बडा बना है उस क्षेत्र में प्रवेश करना मेरे लिए भी संभव हो सकेगा क्या ? इस की शंकर को जरा भी कल्पना नही थी।

उसने अपनी अक्ल के जोर पर शरणगाव को हिला दिया था वहा वह अपने हर काम में सफल हुआ था। उस सफलता के उन्माद के कारण उसे आशा थी कि वह बम्बई को भी अपनी मुट्ठी में कर लेगा। परन्तु बम्बई क्या है, यह प्रत्यक्ष देखने के बाद उसका निडर हृदय भी जीवन भर के लिए हिल गया।

बड़े कष्ट से वह उस प्रकाश तक जाकर पहुँची। वह उसके गाँव का ही एक भाग था। पुन घूमकर वह शरणगाँव की ही सीमा पर आ गई थी। उस जगह मिशनरियों द्वारा स्थापित एक प्रसूतगृह था।

टिमटिमाते हुए दीप की हलकी रोशनी में उसने प्रसूतगृह की तख्ती देखी। उसके श्रद्धालु मन को लगा कि ईश्वर ही उसे उचित स्थान तक ले आया।

द्वार में घंटी की रस्सी लगी थी। उस रस्सी को खींचने से भीतर घंटी बजती थी। उसने असहाय यातनाओं के बीच बड़े कष्ट से रस्सी को पकड़ने की कोशिश की। वेदनाएँ उसे असह्य हो उठी थीं। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। जैसे-तैसे उसने रस्सी खींची और दरवाजे के पास जाने की कोशिश करने लगी। पर दरवाजे के पास जाने से पहिले ही वह लड़खड़ाकर वहीं गिर पड़ी और बेहोश हो गई। उसी समय दरवाजा खोलकर बूढ़ा पादरी बाहर आया।

उस गाँव का हर व्यक्ति दुर्गाबाई को पहचानता था। उसी तरह पादरी भी उससे अपरिचित न था। पर दोनों के मार्ग भिन्न-भिन्न होने के कारण एक दूसरे से परिचय होने का उन्हें कोई अवसर न आया था। दुर्गाबाई के बेसहारा होजाने की खबर उसके कानों में नहीं पड़ी थी, इसलिए उसे दरवाजे में बेहोश पड़ी देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने दो,चार आदमियों की मदद से दुर्गाबाई को उठाकर अस्पताल में दाखिल किया। उसका इलाज शुरू हो गया। अपनी उस विकट हालत में भी दुर्गाबाई एक ही वाक्य बुदबुदा रही थी—"अगर देना है तो लड़का ही देना, भगवान !"

इलाज शुरू हो गये थे—।

हाल ही में जन्मे एक मासूम जीव की आवाज कानों में पड़ते ही दुर्गा ने आँखें खोली। "लड़का ही है।"—नर्स ने कहा।

दुर्गा का चेहरा हर्ष से खिल उठा। 'अन्त में भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली!' कहकर उसने पुनः आँखें बन्द कर लीं।

उसका स्वास्थ्य बहुत नाजुक हो गया था। आसन्नप्रसव स्थिति में उसे उपवास करना पड़ा था और काफी श्रम उठाने पड़े थे। एक तो वह पहिले से ही कमजोर थी। इसके कारण इतनी अच्छी होने के लिए कि वह घूम-फिर सके उसे काफी समय लग गया। पादरी आकर उसके बिस्तर के पास घंटों बैठा रहता था। भिन्न-भिन्न विषयों पर बातें करके उसके मन को संतोष देने का वह बड़ी आत्मीयता से प्रयत्न कर रहा था।

परोपकार का व्रत पालन करने के लिए ही उस पादरी ने मिशनरी का पेशा स्वीकार किया था। लोगों को ईसाई बनाने के मूल उद्देश्य से ही यद्यपि यह संस्था स्थापित हुई थी, फिर भी ग्रामवासियों की बुरी अवस्था से पूर्ण परिचित होने के कारण लोगों को ईसाई बनाने की अपेक्षा ग्रामीणों को दुख और दरिद्रता के चंगुल से छुड़ाने में ही उसे आनन्द होता था। इसीलिए दुर्गाबाई के प्रति उसे आदर था। दोनों के आदर्श एक ही थे, परन्तु दोनों के उपचार भिन्न थे। पादरी के पास अमेरिकन मिशन के खजाने का सहारा था। दुर्गा असहाय थी। उस असहायता के बल पर ही वह जो कार्य कर रही थी वह कार्य मिशनरियों के धन के बल से होने वाले कार्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण और अधिक ठोस था।

गाँव की सेवा के लिए उसने किस तरह कष्टों को अपनाया, दरिद्रता में कैसे सन्तोष प्राप्त किया? इसका इतिहास पादरी ने धीरे-धीरे उसके मुँह से कहला लिया। आत्म-प्रशंसा से उसे बड़ी घृणा थी। उसने जो भी सेवा की थी या जो सेवा वह कर रही थी, उसके विषय में अपने मुँह से एक बार भी वह कभी न कहती थी, इसीलिए सारा हाल उसके मुँह से कहलवा लेने में पादरी को बड़े प्रयास करने पड़े।

प्रसव के समय उसे यद्यपि बड़ी यातनाएँ हुई थीं, पर उसके बच्चे पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। बच्चा अच्छा मोटा-ताजा, पूर्ण स्वस्थ था। उस बच्चे के मुख की ओर देखते ही दुर्गाबाई के निस्तेज चेहरे पर आनन्द की लालिमा उभर उठी।

एक तरह से उसने अपने पति से युद्ध छेड़ दिया था। पाप और पुण्य के झगड़े में जय किसकी होती है यह निश्चित करने के लिये ही उसे एक लड़के की जरूरत थी। अपने ढंग से वह उस लडके के मन को गढना चाहती थी। बुद्धि जन्मगत होती है, परन्तु उस बुद्धि को किस तरह मोड़ा जाय, यह मनुष्य की इच्छा पर अवलंबित होता है। उसकी धारणा थी कि विशेष प्रकार से बुद्धि को मोड़ देने से लडके अपनी इच्छा के अनुसार बनाए जा सकते हैं।

गीताकार का स्मरण करके उसने यह निश्चय किया था कि सत्य की नींव पर ही अपने लडके को संस्कारित करूँगी और सत्य का पक्ष लेने के लिए दुनिया की सारी झुठाई से लड़कर उसे पति को विजयी हुआ दिखाऊँगी। इसलिए उस लडके को देखकर प्रतिक्षण उसके हृदय में आनन्द की लहरें उमड रही थीं।

उसके आश्रम में काम करने वाली एक बुढ़िया पन्द्रह-बीस दिन के बाद पादरी की सम्मति से उसे अपने घर ले गई। उस बुढ़िया का घर कोई बहुत बड़ा नहीं था। एक छोटी सी झोपडी थी। उसमें दूसरा कमरा भी न था। पेट-भर अन्न प्राप्त करना भी उस बुढिया के लिए मुश्किल था। दुर्गाबाई को पता न चले, इस अन्दाज से पादरी ने कुछ दिनों तक दोनों की उपजीविका का प्रबंध किया था।

पति और पत्नी दोनों के मार्ग इस तरह भिन्न हो गये। पाप के पेशे में जिस समय शंकर बम्बई में निमग्न हो गया था, उसी समय गाँव में दुर्गाबाई धर्म के अन्न पर अपनी गुजर कर रही थी।

उसे बार-बार लगता, यह झगड़ा कहाँ खत्म होगा? जय किसकी होगी? पाप की या पुण्य की? सत्य की या असत्य की?

घूमने-फिरने की थोड़ी शक्ति आते ही दुर्गा पुनः पहले की तरह काम में लग गई। सुख और संतोष के दिनों में उसने जिन कामों को निर्के परोपकार की दृष्टि से आरम्भ किया था, वही काम वर्तमान दुरावस्था में अब स्वार्थ की दृष्टि से करने पड़ेंगे, इसी का उसे दुख हो रहा था।

उस जमाने में खादी का आंदोलन शुरू नहीं हुआ था और ग्राम-उद्धार की कल्पना भी किसी के दिमाग में नहीं आई थी। गांधी जी के राजनैतिक नेता होने और खादी का आंदोलन शुरू होने से पहिले ही दुर्गाबाई उस गाँव के लोगों को चरखा और करघा का महत्व जँचा रही थी। पहले वह गाँव जुलाहों का था, इसीलिए उसके द्वारा चरखे और करघे का यह पुनरुद्धार वहाँ के लोगों को जँच रहा था।

जिस गरीब बुढ़िया ने दुर्गा को अपने घर आश्रय दिया था, वह स्वयं बिल्कुल बेसहारा थी। दुर्गा के अनजाने पादरी के द्वारा दी गई आर्थिक सहायता पर कुछ दिनों से उन दोनों की गुजर हो रही थी, परन्तु जब दुर्गा को इसका पता चला तब उसने बुढ़िया को पादरी से सहायता लेने की मनाही कर दी। उसकी यह टेक ही थी कि वह किसी अन्य के अन्न पर जीवन नहीं बितायेगी।

जो काम रोज होते थे उसमें वह अधिक उत्साह से और अधिक स्वार्थ की दृष्टि से भाग लेने लगी। 'स्वार्थ की दृष्टि से' कहने का मतलब यह है कि इससे पहिले वह सिर्फ उतना ही कमाती थी जितना उस अकेली के लिए आवश्यक होता था, पर अब एक बुढ़िया और एक छोटे

बच्चे का भार उस पर आ पड़ा था, इसलिए पहले की तरह अधिक देर तक प्रवचन न कर वह प्रवचन कम समय तक और काम अधिक समय तक करने लगी।

पापड और अचार बनाकर बम्बई भेजने का उसने एक कारखाना ही खोल रखा था। इस कारखाने के खोलने की एक पृष्ठ-भूमि थी। हुआ यह था कि जब दुर्गाबाई अस्पताल से निकलकर बुढ़िया के घर रहने लगी और स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर उसने अपना पहला कार्य फिर आरम्भ कर दिया, तब उसके मार्ग-दर्शन मे काम करने वाली अन्य स्त्रियों को उसके उदर-निर्वाह की चिंता होने लगी। उन्होंने दुर्गाबाई की उपजीविका के लिए आपस मे थोड़ा-थोड़ा चदा एकत्रित करने का निश्चय किया। इसका पता जब दुर्गाबाई को लगा, उस समय उसने उन स्त्रियों से स्पष्ट शब्दों मे कहा—"तुम लोग मेरी चिंता मत करो। तुम लोगो ने मेरी उपजीविका के लिए जो उपाय सोचा है वह मुझे बिल्कुल पसद नही। वह दान है—भीख है—और भीख के अन्न पर मैं जीवित नही रहना चाहती। मै यह भी नही जानती कि मेरा बच्चा भीख के अन्न पर पाला जाय। अपनी उपजीविका के लिए मैं स्वय अपने पसीने से कमाऊँगी। तुम लोग मेरी चिंता छोड दो।"

"अगर हम आपको कुछ दे तो इसमें बिगडा क्या?"—उनमें से एक महिला ने कहा—"पहले जमाने मे गाँव में जो गुरुजी लडकों को पढाया करते थे, उनकी उपजीविका का सारा प्रबध गाँववाले ही तो करते थे। उसी तरह हम करना चाहती हैं। यह सेवा है हमारी ..."

दुर्गाबाई बोली—"तुम्हे दुनिया की सेवा करनी है। मेरी नहीं। मैं भी एक सेविका हूँ—जैसी तुम, उसी तरह मैं। मैं यहाँ गुरु का काम नही कर रही हूँ—यहाँ हम सबका नाता समान है। हम सभी सेविकाएँ हैं। हम सब मिलकर जो काम कर रही हैं वह सबकी सेवा के लिए है। मेरा अपना यह चरखा मुझे और मेरे वर्तमान परिवार को पेट भर अन्न दे देता है। यह बात जरूर है कि इस समय मेरे अपने

परिवार में दो व्यक्ति बढ़ गए हैं। एक बुढ़िया और एक मेरा बच्चा। इसलिए पहले की अपेक्षा मुझे अब अधिक शारीरिक मेहनत से काम करना आवश्यक हो गया है। यहाँ आम इफरात मिलते हैं। उनका अचार बनाकर यदि हम बम्बई भेजें तो हम सब के उदर-निर्वाह की समस्या हल हो जायगी।"

यह कल्पना सब को जँच गई और तब से आचार और मुरब्बे आदि बनाकर बम्बई भेजने का काम आरम्भ हो गया और धीरे-धीरे उस कारखाने का विस्तार बढ़ने लगा। उस कारखाने से जो मुनाफा होता उसमें से दुर्गाबाई अपने लिए सिर्फ अपनी उपजीविका के लिए आवश्यक रकम रखकर शेष कारखाने का विस्तार बढ़ाने में लगा देती।

कारखाने में काम होता रहता और साथ ही दुर्गाबाई का प्रवचन भी शुरु रहता। दुर्गाबाई तत्वज्ञानिन थी, पर दकियानूसी नहीं थी। जिसने तत्वज्ञान का अध्ययन किया है वह व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, सहसा पुराणपंथी विचारों का नहीं होता। अन्धश्रद्धा और तत्वज्ञान दोनों में महान् अन्तर है। इसलिए भोले भावुकों को व्रत-संकल्पों के चक्कर में डाल देने वाले अन्ध-शास्त्रियों और पंडितों के प्रवचनों की अपेक्षा उसके प्रवचनों का ढंग बिल्कुल ही अलग होता था। स्वयं प्रवृत्तिमार्गी होने के कारण निवृत्ति-मार्ग की ओर वह कभी नहीं झुकी और न ही उसने दूसरों को निवृत्ति-मार्ग की ओर कभी झुकाया।

यही कारण था जो अपने प्रवचन में उसने सर्वत्र लोकप्रिय हुई 'ज्ञानेश्वरी' का कभी उपयोग न किया। उसके प्रवचनों का आधार वामन पंडित की 'यथार्थ दीपिका' होती थी। सब लोगों की सेवा करना—कर्म-फल की जरा भी कामना न करके सेवा के लिए सेवा करना, यही गीता का महत्तम तत्व है, यही उसका उपदेश था और इसी के अनुसार वह स्वयं आचरण भी किया करती थी।

सम्प्रदायिक ज्ञानेश्वरी को छोड़कर, यथार्थ-दीपिका को प्रमाण मानने के कारण सम्प्रदायी लोग उसका विरोध करते थे। विरोध करने

वालों का ज्ञानेश्वर के प्रति अभिमान लेखक ज्ञानेश्वर के चमत्कारपूर्ण जीवन के कारण उत्पन्न हुई अंधश्रद्धा पर आधारित था। दुर्गाबाई ने बचपन में ही संस्कृत पढ़ी थी। उसने शंकराचार्य के गीताभाष्य का अच्छा अध्ययन किया था, इसलिए उसे ज्ञानेश्वर का कोई महत्व नहीं मालूम हुआ। उसकी यही धारणा थी कि ज्ञानेश्वरी अलंकारिक भाषा में किया गया, सुरेश्वराचार्य की टीका पर आधारित, शंकर-भाष्य का सिर्फ रूपान्तर है। वामन पंडित ने अपनी यथार्थ दीपिका में ऐसे साम्प्रदायिकों को खूब आड़े हाथ लिया है। उनके विचार स्वतन्त्र हैं। शंकर, वल्लभ और रामानुज, इन तीनो महनीय व्यक्तियों के अद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत, इन तीनों तत्वो की अपेक्षा, वामन ने भक्ति का समर्थन करने के लिए बारहवें अध्याय को मध्य-बिंदु कल्पित करके गीता के तत्वज्ञान भक्ति के केन्द्र पर की रचना, साम्प्रदायिक भले ही न हो, पर स्वतन्त्र है, इसलिए वह उसे जँची और इसीलिए वह वामन के गीतार्थ का प्रचार करने के लिए आगे बढ़ी।

गाँव के भावुकों को गीता का यह कर्म पर अर्थ अधिक आकर्षित लगता था। उसमे अन्धश्रद्धा के लिए कहीं भी गुंजाइश न थी। सर्वसाधारण अशिक्षित लोगो मे अन्ध-श्रद्धा की ओर झुकने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति को काट लेने के लिए गीतार्थ की तलवार हाथ मे देने वाली 'यथार्थ-दीपिका' के प्रति इसीलिए उसे बड़ा अभिमान था।

इधर जिस समय दुर्गाबाई की ग्राम-सेवा इस स्वरूप मे चल रही थी, उसी समय उधर बम्बई मे शंकर इस विचार मे खोया हुआ था कि अपने कार्य-क्षेत्र मे वह किस ढंग से प्रवेश करे। अनुभव के अभाव में पहले-पहल उसे यद्यपि काफी धक्के खाने पड़े, पर स्वभाव ही से निडर होने के कारण उसने वे सब बर्दाश्त कर लिए। आगे चलकर ऐसे गुनाह करने में, जिनका कभी कोई पता ही न चले, वह माहिर हो गया था। उसके सामने ऐसे अनेक साधन उपस्थित थे कि उनके द्वारा सीधी राह से भी वह मालामाल हो सकता था, पर इसमे समय लगता, जिसके लिए

उसे धीरज नहीं था ।

पहले-पहल उसने घुड़दौड़ की ओर अपनी निगाह मोड़ी । ... लोगों से उसे यह पता लगा था कि रेस का भी अपना एक विज्ञान होता है । इसलिए उसने रेस के विज्ञान का अच्छी तरह अध्ययन किया । इस अध्ययन से जब उसे यह पता लगा कि रेस में निश्चित गणित के नियमों की अपेक्षा झुठाई ही अधिक काम में आती है, तब इस धंधे में सफलता प्राप्त करने के लिए वह झुठाई के नये-नये मार्ग खोजने लगा । उन नये मार्गों के बल पर थोड़े ही दिनों में वह मालामाल हो गया । थोड़े ही दिनों में वह घोड़ों का मालिक बन गया और उस मालिकी के जोर पर व्यापार के अन्य क्षेत्रों में भी वह बड़ी तेजी से प्रवेश करने लगा । रेस के साथ ही वह सट्टा और जुआ भी खेलने लगा । अपने हथकंडों के जोर पर इन स्पर्धाओं में वह जैसे-जैसे सफलता प्राप्त करने लगा वैसे-वैसे उसका नाम सारी बम्बई में रोशन होने लगा ।

बम्बई में कदम रखते ही उसे मालूम हो गया था कि केशवलाल की वहां बड़ी धाक जमी है । उससे शकर को जलन होने लगी, परन्तु वह इतना कर्तव्य-शून्य नहीं था कि सिर्फ जलता ही बैठा रहा । बम्बई के बाजार में केशवलाल को जो स्थान प्राप्त था उससे वह स्थान छीन लेने का उसने दृढ़ सकल्प कर लिया था और इसी उद्देश्य को हमेशा ध्यान में रख वह अपने काम में लग गया था । केशवलाल की हर हलचल पर उसने एक मँजे हुए जासूस की कड़ी निगाह रखी ।

केशवलाल और शकर, दोनो के कमाल में एक महत्वपूर्ण, किंतु छोटा-सा भेद था । केशवलाल ने गुंडो का एक दल पाल रखा था और उन गुण्डो के जरिये ही वह हर क्षेत्र की सारी उल्टा-पल्टी कराया करता था । वह इसके लिए बड़ा सतर्क रहता था कि किसी भी गुनाह का सम्बन्ध उस तक न पहुंच सके । कपास के प्रख्यात व्यापारी की हैसियत से बम्बई में उसका खूब नाम था । उसके इस नाम को थोड़ा भी धक्का ... पावे इसके लिए वह हमेशा बड़ा सजग और सावधान रहता था ।

इसीलिए उसने अन्य झंझटो की सारी जिम्मेदारी अपने पिट्ठू भिकू सेठ को, जो कपड़ों का एक प्रसिद्ध व्यापारी था, सौंप दी थी।

उसकी उल्टा-पल्टी का फैलाव काफी बड़ा था। हर क्षेत्र मे प्रत्येक काम के लिए उसने एक-एक गुण्डा नियत कर दिया था और ये सब गुण्डे सीधे भिकू सेठ के मातहत थे। केशवलाल से उनका कोई सम्बन्ध नही रहता था। कभी-कभी इनमें का कोई गुण्डा पुलिस के चंगुल मे आ जाता था। उसे सजा भी हो जाती थी, परन्तु उसका सबन्ध केशवलाल तक कभी न पहुँच पाता था।

शंकर को लगा कि केशवलाल की यह योजना सुरक्षित स्वरूप की नही है। वह अपने काम के लिए अगर किसी गुण्डे से मदद लेता, तो अपना काम हो जाने पर वह उस गुण्डे को छुट्टी दे दिया करता था। उसने अपने काम का यही तरीका अख्तयार किया था। किसी भी मनुष्य को उसने अपने से बाँधकर नही रखा। चूँकि हर काम के लिए नए गुण्डे की व्यवस्था की जाती थी, इसलिए जो काम हो चुकता था उसका सम्बन्ध जहाँ-का-तहाँ टूट जाता था। केशवलाल ऐसे सम्बन्धो से निर्मित होने वाले ताने-बाने के जाल मे फँस जाया करता था पर ये सम्बन्ध जहाँ-के-तहाँ टूट जाने के कारण शंकर की सत्ता निर्बाध रहती थी।

केशवलाल के पुरुषार्थ को कम कर देने वाला एक दोष शंकर की नजरो मे आता था। जुए के अड्डे शुरू करने के लिए उसने पहिले मे ही वेश्याओ से सहायता ली थी। वह स्वयं बड़ा विलासी था। यद्यपि वह इन सभी वेश्याओं के पाश मे नही फँसा था फिर भी अपनी विलासी वृत्ति को तृप्त करने के लिए कौटुम्बिक बंधन से थोडी देर के लिए मुक्त होने का एक साधन उसने अपने लिए निर्मित कर लिया था।

सुन्दरी नाम की वेश्या थी। वह गोवा की रहने वाली थी। संगीत के एक कार्यक्रम मे केशवलाल की उस पर नजर पड़ गई थी। वहीं केशवलाल ने हजारो रुपये खर्च करके उसके कौमार्य को भंग करने का मंगल-कार्य किया और उसके बाद मे वह केशवलाल के पास एक

विवाहित पत्नी की तरह ही एकनिष्ठा से रहती थी। विवाहित पत्नी की तरह ही वह केशवलाल के हर काम में अर्धांगिनी का अपना कर्तव्य बजा रही थी। केशवलाल के तरीके उसे पसन्द नहीं थे, परन्तु निष्ठावान हिन्दू पत्नी पतिव्रता की भावना से बँधी होने के कारण दुराचारी पति के दुराचार पर जिस भक्ति से पर्दा डाल देती है और उसकी सुरक्षा के लिए जिस निष्ठा से उसमें सहकार्य करती है, उतने ही भक्ति-निष्ठ अन्तःकरण से वह केशवलाल के प्रत्येक कार्य में अपना हाथ बँटाती थी।

अपनी इस निष्ठा का उचित प्रतिदान वह केशवलाल से पा नहीं रही थी। अपनी विलासिता के चरितार्थ के लिए अपनी भ्रमर-वृत्ति को वह कोई रोक नहीं लगाता था। सुन्दरी यह देखती थी। उसकी इस वृत्ति से उसे परावृत्त करने का पद-पद पर भरसक प्रयत्न भी करती थी, पर उसके सारे प्रयत्न बेकार ही होते थे।

शंकर को केशवलाल के आचरण में जो महान दोष दिखायी दिया वह थी उसकी यही भ्रमर-वृत्ति, उसका विलासी जीवन। इस वृत्ति से उसने दूर रहने का निश्चय किया। थोड़ी अवधि में अपने पुरुषार्थ के बल पर वह केशवलाल के करीब-करीब बराबर आ गया था। प्रतिष्ठित व्यापारियों में केशवलाल का प्रभाव था इसमें शक नहीं, परन्तु उसके दोष के कारण उसमें कुछ हलकापन आ गया था। इसके विपरीत इस दृष्टि से शंकर का आचरण विशुद्ध होने के कारण वह केशवलाल से टक्कर लेकर धीरे-धीरे उससे ऊँची सीढ़ी पर पहुँच रहा था।

बम्बई के व्यापारियों में केशवलाल और शंकरलाल (अब वह अपने को शंकरलाल कहलवाने लगा था) दोनों ही प्रतिस्पर्धी हैं, यह बात सब को मालूम हो गयी। इस नाते दोनों एक समान ही ख्याति प्राप्त करने लगे। यह देखकर कि शंकरलाल मेरी प्रतिष्ठा से स्पर्धा करके ऊँचा उठना चाहता है, केशवलाल ने उसे नीचा दिखाने की बड़ी ईर्ष्या से कोशिश करना शुरू किया। इस ईर्ष्या के कारण केशवलालके नित्य के व्यवहार की में दुर्भाव लक्षित होने लगा।

अपने नित्य के व्यवहार की ओर केशवलाल का पूरा ध्यान न होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा की अभेद्य चाहरदीवारी की ईंटें फिसलने लगी थी और शकर को उस चाहरदीवारी पर प्रहार करना आसान हो गया।

केशवलाल का ख्याल था कि शकर को मुंह की खिलाने के लिए सर्वोत्तम साधन वेश्या है। ये साधन उसके पास थे। उस साधन के जरिये उसने शकर को अपने चंगुल में फंसाने की कोशिश शुरू की।

जिस समय केशवलाल के दोष को जानकर शकर उस पर अपनी मार कर रहा था, उसी समय केशवलाल शकरलाल को नैतिक अध पतन की ओर प्रवृत्त करने की कोशिश कर रहा था, परन्तु इस विषय मे शकरलाल अभेद्य था। शकरलाल को इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि जो मनुष्य मदिराक्षी के वशीभूत हो जाता है, वह कभी-न-कभी फँसे बिना नही रह सकता। इसलिए केशवलाल द्वारा फेंके गये इस जाल मे शंकर कभी न फँसा। यह देखकर की कल ही बम्बई मे आया हुआ एक मनुष्य मुझसे स्पर्धा करके मेरा नंबर ले रहा है, केशवलाल का आत्म-विश्वास डगमगाने लगा था और इसका फायदा उठाकर शंकरलाल केशव लाल की हर क्षेत्र की प्रभुता को धीरे-धीरे अपने कब्जे मे कर रहा था।

अपने पिता के इन सब प्रयत्नो की ओर मोहन एक दर्शक की तरह देख रहा था और साथ अपनी शक्ति के अनुसार अनेक छोटे-बडे गुनाह स्वतन्त्र रूप से करके अपने बाप को मन-ही-मन खुश कर रहा था। अपने इन कामो मे वह अपने पिता की कभी कोई सलाह न लेता था। बाप के समान ही उसकी वृत्ति भी बिल्कुल निडर थी, परन्तु शकरलाल के हृदय मे किसी जगह जन्मगत सज्जनता का जो गीलापन आ गया था, उस सज्जनता के बीज मूल मे ही न होने कारण मोहन की निडर वृत्ति शकर की अपेक्षा अधिक तीव्र होती जा रही थी।

यह देखकर की लड़का मेरे समान ही, बल्कि मुझसे भी अधिक कमाल कर रहा है, शंकर की महत्वाकांक्षा बढ़ चली।

६

दो स्थानों पर दोनों के संस्कार अलग-अलग प्रकार से ही हो रहे थे। दारणगाँव में दुर्गाबाई एक ऐसा कार्य कर रही थी जिसमें गरीब लोग मेहनत से चार पैसे कमाकर अपनी उपजीविका ठीक से चला सके और उसी समय उधर बम्बई में शकर अमीर शौकीन और विलासी व्यापारियों को लूट कर अपने लिए दौलत जमा रहा था। दोनों समान निष्ठा से अपना-अपना काम कर रहे थे। दोनों को ही अपने-अपने आदर्शों के प्रति बड़ी आस्था थी, परन्तु दोनो के उद्देश्य बेशक अलग-अलग थे। एक स्वार्थ-त्याग की नींव पर पुण्य का प्रसाद खड़ा कर रही थी और दूसरा दूसरों की संपत्ति का अपहरण करके पाप के पहाड़ उठा रहा था।

शकर के पूर्व जीवन में उस पर जो बीती थी उसका उसे पूर्ण ज्ञान होने के कारण उसके हाथ से एक पाप अलबत्ता नहीं हो रहा था। क्रोध था सिर्फ अमीरों पर, उपकारों को भुलाकर कृतघ्न हो जाने वाले धन के उन्माद से मगरूर हुए अमीरों पर। यदि यह कहें कि पुराने जमाने के तांतिया भील या उमाजी नाइक जैसे डाकुओं का शकर आधुनिक सस्करण था तो कोई हर्ज नहीं। पर इसमें भी थोड़ा फर्क था। तांतिया भील और उमाजी नाईक अमीरों को लूटकर उस लूट का बहुत सा हिस्सा गरीबों में बाँट देते थे, परन्तु उनके इस नये सस्करण में यह बात नहीं थी। शकर की सारी लूट स्वयं अपना ही ऐश्वर्य बढ़ाने के काम आती थी। लेकिन उसने गरीबों को हाथ नहीं लगाया।

गरीबों पर उपकार करने का उसका काम उधर शरणगाँव में दुर्गा कर रही थी। जितना पैसा शकर के हाथ में खेल रहा था, उतना यदि दुर्गा के पास होता तो वह शरणगाँव को कुबेर नगरी बना देती। अपने सत्कार्य के लिए वह पाप का पैसा नहीं चाहती थी। अपने पसीने की कमाई से ही गरीब अपना दुख दूर करें, यह उसका सिद्धांत था।

उसकी यह स्वार्थहीन ग्राम-सेवा देखकर, जब कुछ धनी उसे पैसे से मदद करने के लिए आगे बढ़े, तब उसने पहिले उनसे यह पूछा कि उनके पास वह पैसा किस जरिये से आया है।

यह मालूम होते ही कि उस प्रत्येक धर्मात्मा के धन का मूल पाप में था, बड़ी विनम्रता से उसने उनका दावा अस्वीकार कर दिया। गाँव के लोगों को यह बात अच्छी न लगी। वे उसे दोष देने लगे, उसकी निंदा करने लगे, परन्तु किसी की निन्दा या स्तुति की तनिक भी परवाह न कर उसने अपना कार्य यथावत जारी रखा।

मिशन हाऊस के पादरी से हुआ उसका परिचय अब दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा था। उसकी निरपेक्ष जनसेवा के कारण उसके प्रति पादरी का आदर भी उतना ही बढ़ने लगा था। दुर्गाबाई और पादरी दोनों के मार्ग अलग-अलग थे। मिशन के द्वारा निश्चित कर दिये गये कार्य-क्रम के परे पादरी कुछ भी नहीं कर सकता था। अमेरिका से उसे जिन निश्चित कार्यों के लिए धन आ रहा था, उस धन को उन निश्चित कार्यों की मदों में ही खर्च करना आवश्यक था। इसलिए दुर्गाबाई का अनुकरण करके ग्रामसेवा करने का उसका उद्देश्य यद्यपि प्रत्यक्ष स्वरूप में परिणित नहीं हुआ, फिर भी जो कार्य दुर्गाबाई कर रही थी उसकी ओर वह अपने काम की अपेक्षा अधिक सहानुभूति से देख रहा था।

दुर्गाबाई का छोटा लड़का कुमार उसी की शिक्षा में बढ़ रहा था। कयाधु के उदर में आये प्रल्हाद को नारद द्वारा दिया गया उपदेश जिस तरह उसके जन्म के बाद काम में आया, उस तरह दुर्गाबाई का स्वयं-सिद्ध शिक्षाक्रम कुमार के भविष्य को बना रहा था।

पादरी की छाया में ही उसकी शिक्षा हो रही थी। गाँव [illegible]
के बाहर पादरी उसे अंग्रेजी भी पढ़ाया करता था। इस प्रकार अंग्रेजी और
मराठी दोनों भाषाओं का उसका अध्ययन साथ-साथ ही हो रहा था।

इसी तरह कुछ वर्ष बीते। शंकर का कोई समाचार दुर्गा को नहीं
मिल रहा था मिलने का कोई रास्ता ही न था। बम्बई में शंकर की
प्रतिष्ठा मर्यादा बढ़ गई थी, फिर भी उसका कोई भी समाचार दुर्गा के
कानों तक नहीं पहुँचा था। गाँव के जो लोग कभी-कभी बम्बई जाते
थे, उनसे भी शंकर की भेंट होना सम्भव नहीं था। आने वाले कुछ लोग
मध्यम श्रेणी के होते और कुछ बिल्कुल ही गरीब होते थे, परन्तु शंकर
इन दोनों सीढ़ियों को पार करके और कितनी ही सीढ़ियाँ ऊपर चढ़
चुका था।

उन पिता-पुत्र की याद दुर्गा को हमेशा आया करती। वे सुखी रहें
और उन्हें सुबुद्धि प्राप्त हो इसके लिए वह रोज भगवान से प्रार्थना
करती थी। उसकी प्रार्थना बेकार नहीं होगी, ऐसी उसकी श्रद्धा थी।
परन्तु सिद्ध यह हो रहा था कि भगवान उसकी आधी प्रार्थना ही स्वीकार
कर रहे थे। भगवान ने उन दोनों का कल्याण किया, पर उन्हें सुबुद्धि
नहीं दी।

दुर्गाबाई का दैनिक कार्य घड़ी की तरह बिल्कुल नियमित रूप से
चल रहा था। अपने उस एक जैसे जीवन से वह कभी नहीं ऊबी।
अपने कार्य में वह पूरी तरह खो गयी थी, उसमें एकरूप हो गयी थी।
वह कार्य उसकी जिन्दगी हो बैठा था। यदि वह रुक जाता तो उसके
प्राण टिक नहीं सकते थे।

उसके कार्य में उसे प्रोत्साहन देने वाला एक ही व्यक्ति था—और
वह था मिशन हाऊस का वृद्ध पादरी बाबा।

यद्यपि वह पादरी दुर्गाबाई के आश्रम में बार-बार आया करता,
फिर भी दुर्गाबाई उसके मिशन हाऊस में कभी न जाती थी। जो कार्य
दुर्गाबाई ने अपने हाथ लिया था, वह धर्म की नींव पर स्थित था।

धर्म के अनुष्ठान पर खड़ा किया गया कार्य सफल होता है ऐसी उसकी अपनी दृढ़ श्रद्धा थी। इसीलिए वह हमेशा यह सावधानी बरतती थी कि उससे ऐसी कोई हरकत न हो पावे जिससे गाँव वालों की धार्मिक भावनाओं को किसी तरह कोई ठेस पहुँचे। यही कारण था कि उसे पादरी जैसे सत्पुरुष से, यथासंभव इच्छा न होते हुए भी, अपने आपको दूर रखना पड़ रहा था।

गाँव में धर्म-अधर्म का प्रश्न बड़ा नाजुक होता है। धर्म के मामले में जहाँ नगर के सुशिक्षित लोगों में भी कट्टरता दीख पड़ती है, वहाँ गाँव के अनपढ़ लोगों में वह न पाई जाय यह कैसे हो सकता है? प्रत्युत अपने धर्म के प्रति तीव्र अभिमान रखने वाले लोगों की संख्या गाँव में ही अधिक मिलती है। इस विषय में उनकी दृष्टि नगरवासियों की अपेक्षा अधिक संकुचित होती है।

दुर्गाबाई ने दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया था, इसलिए धर्म-भेद की भावना उसके हृदय से निकल गई थी। 'सर्व धर्मान परित्यज मामेकं शरण व्रज' कहने वाले गीताकार की वह निष्ठावान अनुयायिनी थी। इसलिए पर-धर्म का उसने कभी तिरस्कार नहीं किया।

उसमें भी कृष्ण और ईसा के धर्म-तत्व समान धर्म-भावना के होने के कारण उसे कृष्ण के बराबर ही ईसा के प्रति भी आदर था। विशेषतः यह देखकर कि ईसा के नाम पर चल रहे निरपेक्ष जनसेवा के कार्य को स्वीकार कर एक वृद्ध पादरी हजारों मील दूर से यहाँ आकर अपना सारा जीवन एक गाँव में खर्च कर रहा है, ईसा के उपदेश के प्रति उसके हृदय में आत्मीयता जगा करती।

सब के दैनिक कार्य इसी रीति से चल रहे थे कि इसी समय पादरी बाबा के घर रहने के लिए एक लड़की आई। वह हिन्दू थी। लड़की छोटी थी और कुछ लोगों ने यह अफवाह फैला रखी थी कि पादरी उस लड़की को ईसाई बनायेगा।

परन्तु परिस्थिति यह नहीं थी। उसके साथ हिन्दू जैसा ही बर्ताव

होता था। उसके खाने-पीने के लिए खास तौर पर हिन्दू रसोईया रखा गया था। उसके कपड़ों आदि से ऐसा लगता जैसे वह किसी धनी की लड़की है। उसके आचार-विचार यद्यपि हिन्दू की तरह थे, पर उसकी पोशाक इसाईयों की तरह थी। बम्बई जैसे शहर में अंग्रेजी ढंग की पोशाक पर किसी का ध्यान न जाता और न कोई जिज्ञासा ही उसे देख जाग्रत होती, परन्तु गाँव में उस हिन्दू लड़की के बदन पर अंग्रेजी ढंग की पोशाक और उसका अंग्रेजी ढंग का शृंगार लोगों की आँखों में चुभे बिना न रहा

इसीलिए गाँव के लड़के उस लड़की का मजाक उड़ाते। उसके पीछे "ईसाइन है, ईसाइन है" कहकर दौड़ते। बेचारी लता को वह मजाक असह्य हो उठता।

जब गाँव के लड़के उसे इस प्रकार चिढ़ाते, तब दुर्गाबाई का बेटा कुमार उसकी मदद के लिए दौड़ पड़ता और उन लड़कों से उसका पीछा छुड़ाता।

एक दिन इसी तरह लड़के उस लड़की के पीछे पड़ गये थे। उसे "ईसाइन है, ईसाइन है," कह कर चिढ़ा रहे थे। रोज यही बात होते रहने के कारण वह लड़की काफी चिढ़ उठी थी। नित्य की भाँति कुमार उसकी मदद करने के लिए दौड़ पड़ा। वह उन लड़कों से बोला—"ईसाइन किसे कह रहे हो जी ?"

लड़कों ने लता की ओर अंगुली दिखाई।

"तुम्हें कहाँ से मालूम हुआ कि वह लड़की ईसाइन है ?"—कुमार ने पूछा।

"उसकी पोशाक देखो न ?" -एक लड़का बोला।

"हिन्दू लड़कियाँ भी इस ढंग की पोशाक पहनती हैं।" कुमार के स्वर में क्रोध भरा था।

"मैं ईसाइन नहीं हूँ।"—लता एकदम नागिन की तरह पीछे मुड़ कर चिल्ला उठी, "समझे, मैं ईसाइन नहीं हूँ।"

"फिर पादरी के घर क्यों रहते हो ?" एक लड़क... ...
तुम्हारा यह झगा ?"

"तो इससे क्या हो गया ?" लता बोली—"मैं हिन्दू हूँ।"

"अरे यार, यह हिन्दू ईसाइन है।" एक लड़का चिल्ला उठा और फिर सब लड़के एकदम चिल्लाने लगे, "अरी ओ हिंदू ईसाइन ! अरी ओ हिन्दू ईसाइन।"

कुमार लड़कों की यह हरकत बरदाश्त न कर सका। वह एकदम उन पर टूट पड़ा और एक दो को उसने खूब मार मारी। तब सब लड़के भाग उठे और बहुत दूर जाकर फिर उसी तरह चिल्लाने लगे—"हिन्दू ईसाइन है वह लड़की और कुमार हिन्दू ईसाई है। कुमार हिन्दू ईसाई है।"

"यह क्या परेशानी है। मैं तो तंग आ गई इन लड़कों से ?"—लता रुआँसी होकर बोली।

"यह तो होगा ही।"—कुमार बोला—"क्यों पहनती हो यह अंग्रेजी ढग के कपड़े ?"

"देवी जो देती हैं।" लता बोली—"देवी जो दे उसे पहनना चाहिए।"

"कौन है यह देवी ?"

"मुझे भी क्या पता कि कौन है वह ? बाबा जी कहते हैं कि देवी देती है। जो चीजें देवी उन्हें लाकर देती है वही वे मुझे देते हैं। मेरे लिए यही कपड़े लाकर वह उन्हें देती है। वही कपड़े वे मुझे दे देते हैं और उन्हें ही मैं पहनती हूँ। देवी मेरे लिए अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ भी बाबा को दे जाती है।"

"देवी याने क्या कोई आकाश की देवी है वह ?"

"आकाश की नहीं है जी। वह यहीं कहीं रहती है पृथ्वी पर—शायद बम्बई में रहती है।"

"तो उसका नाम ही देवी होगा शायद ?"

"मुझे इसका नाम नहीं मालूम। बाबाजी कहते हैं कि वह देवी है! वह देवी है।"

"अच्छा! यह बात है?" कुमार बोला—"फिर लेना कहीं से मांगो कि अभी उस देवी से तुम अपने लिए लहँगा और चोली मांगो और उसे ही पहिना करो। फिर तुम्हें यह पोशाक न पहनना होगा।"

"मुझे लहँगा और चोली पसन्द नहीं। यह पोशाक मुझे बड़ी अच्छी लगती है। बचपन से मुझे इसी पोशाक की आदत पड़ गई है।"

"इससे पहले कहाँ रहती थीं तुम?"

"एक बोर्डिङ्ग हाउस में रहती थी। मेरे जैसी वहाँ अनेक लड़कियाँ थीं। वहीं से लाकर मुझे यहाँ बाबाजी के पास रख दिया गया।"

"कौन-कौन है तुम्हारा?"

"बाबाजी जो हैं!" लता के चेहरे पर लज्जा भाव उठा। उसके हृदय में यह बात चुभ गई कि उसका अपना कोई नहीं है।

"पर बाबाजी तो कई वर्षों से यहीं रहते हैं। पहिले तो तुम उनके पास नहीं थीं। जहाँ तुम इससे पहिले रहती थी, वहाँ तुम्हारा कौन था?"

"याने क्या बोर्डिङ्ग में? वहाँ शिक्षकाएँ थीं न? परन्तु वे बाबाजी की तरह स्नेहमयी नहीं थीं।"

"क्या देवी थी वहाँ?"

"अगर देवी होती वहाँ, तो क्या तुमसे मैं अभी न कहती? मैंने भी कहाँ देखा है अभी तक उस देवी को।"—वह रुआँसी होकर बोली।

विषय बदलने की गरज से कुमार बोला—"हाँ, तो फिर कब माँगोगी लहँगा और चोली अपनी देवी से?—पर हाँ—तुम्हें तो वह पोशाक पसन्द नहीं! फिर एक काम करो कि देवी से अपने लिए साड़ी माँग लो। साड़ी ठीक रहेगी। है न?"

"हाँ! हाँ! साड़ी ठीक रहेगी!"—तालियाँ बजाती हुई लता बोली। वह बड़े आनन्द में थी। "साड़ी ही मुझे खूब फबेगी। अब

साड़ी ही माँगूगी मैं।"

दोनों मिशन हाउस की ओर निकल पड़े। अहाते में आते ही बगले के भीतर जा रही लता को रोककर कुमार बोला—"यह देखो" तुम्हारे लिए लाया हूँ।" ऐसा कहकर, उसने कागज का एक पैकट खोला और उस में से मिठाईयाँ निकालकर उसे दिखाई।

"नही, मुझे नही चाहिए।"—लता बोली।

"इन्कार क्यों करती हो ? ले लो। मैं तुम्हारे लिए ही लाया हूँ।"

"कहाँ से ?"

"माँ ने दी है।"

"माँ ने दी है ?" गद्गद् स्वर में लता बोली—"माँ ने तुम्हें दी और मुझे नही दी ?"

"तुम्हारे लिए दी है।"—कुमार उसे गले लगाकर बोला—"माँ ने—मेरी माँ ने तुम्हारे लिए दी है।"

"क्या तुम्हारी माँ ने ?" लता का कण्ठ भर आया था।

"तुम्हारी और मेरी माँ ने।" उसकी चिबुक पकड़ कर कुमार बोला लता हँस पड़ी। कुमार की ओर दुलार से देखती हुई बोली—"झूठे हो तुम। वह तुम्हारी माँ है—सिर्फ तुम्हारी ही . . ."

"हाँ।" कुमार बोला—"और तुम्हारी भी है। तुम्हारी, मेरी और सारे गाँव की माँ है वह ! फिर तुम्हारी भी वह क्यों नहीं होगी।"

"मेरी है देवी।" लता मुँह घुमा कर बोली।

"मेरी भी है देवी।" कुमार ने चुटकी ली।

"कौन ? कौन है तुम्हारी देवी ?" —लता ने पूछा।

"मेरी माँ।"—कुमार बोला।

"मेरी माँ ! मेरी माँ !"—कहती हुई लता एकदम रो पड़ी। उसे पुचकारता हुआ कुमार बोला—"पहले यह खाओ। फिर चलो मेरे घर। मैं तुम्हें माँ दे दूँगा . . . बस।"

दोनों बरामदे में बैठ गए और मिठाई खाने लगे।

७

कुमार और लता जिस समय बाहर बरामदे में बैठे अपनी राम-कहानी कह रहे थे, उसी समय कमरे के भीतर पादरी बाबा के खास कमरे मे एक दूसरी रामकहानी चल रही थी।

पादरी के घर एक पाहुनी पधारी थी। उस ढग की पाहुनी मिशन हाऊस के तात्विक वातावरण मे शोभा देने योग्य न थी।

शंकर जब पहली बार ही बम्बई गया था, उस समय होटल में केशवलाल के साथ जो स्त्री वहाँ आई थी, वही स्त्री, जिसका नाम सुन्दरी था, यह पाहुनी थी। उस स्त्री की ऊपरी साज-सज्जा से लगता था कि वह सभ्य समाज में विचरण करने के लिए अपात्र है। जिस कार्य के लिए वह मिशन हाऊस मे आई थी और उस कार्य के पीछे जो भावना थी, उस कार्य और भावना का उसके बाह्य स्वरूप से मेल नहीं जम रहा था।

पादरी बाबा उससे कह रहे थे—"सौ बार कह चुका हूँ कि तुम यहाँ मत आया करो। एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के नाते मुझ पर बड़ी भारी जिम्मेदारी है। इस जिम्मेदारी को निभाते समय किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न होना मेरे कार्य की दृष्टि से, इष्ट नहीं। बम्बई के बोर्डिंग हाऊस के व्यवस्थापक ने जिस समय मेरा तुमसे परिचय कराया था, उस समय ही मुझे यह डर लग रहा था। यदि मेरी वृत्ति यह न होती कि सत्कार्य के लिए मैं किसी प्रकार के जन-प्रवाद की परवाह नहीं करूँगा तो यह खतरा ही मैं नहीं उठाता। जहाँ तक हम विदेशियों

का प्रश्न है इसमें विशेष कुछ नहीं। परन्तु तुम भारतीय ऐसे मामलों को ओर बड़ी छानबीन से देखते हो। इसीलिए मुझे डर लगता है, मुझे डरना पड़ता है। लता अपनी पूर्व-कहानी बिलकुल नहीं जानती। उसे जानने की जिज्ञासा भी अभी तक उसके मन में नहीं जागी। अगर तुम यूँ आने लगीं और कभी उसकी नजर तुम पर पड़ गयी तो उसके मन में कम-से-कम थोड़ा शक जरूर ही पैदा हो जाएगा। यदि तुम चाहती हो कि तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो तो यह नितान्त आवश्यक है कि लता के मन में कोई संशय न जगे। इसीलिए कहता हूँ कि तुम यहाँ मत आया करो। उसे धोखा मत दो। कम-से-कम आज तो वह बड़े आनन्द में है।"

"ऐसा क्यों कहते हैं, बाबाजी ?" सुन्दरी बोली—"बहन का दिन है मेरा। अपनी कुल-कथा से मैंने उसे अपरिचित रखा है। जन्म से ही मैंने उसे अपने से दूर रखा। मेरी माँ मरी तब वह सिर्फ तीन वर्ष की थी। मेरे सिवा उसे दूसरा कोई सहारा नहीं था। उसे घर लाकर रखना संभव नहीं था। उसकी सेवा के लिए चार नौकर रख देना मेरे लिए कोई कठिन न था, परन्तु इस उद्देश्य से कि जिस कुल-धर्म के अनुसार मैं पाप की खाई में गिर पड़ी हूँ, उस कुल-धर्म का उसे अता-पता भी न चले, मैंने उसे अपने से पहले से ही दूर रखा। हिंदुओं के अनाथालय कैसे होते हैं यह मैं जानती हूँ। हिंदुत्व का अभिमान रखकर अपनी बहन को किसी हिंदू अनाथालय में रखने की अपेक्षा मिशन बोर्डिंग में रखना ही मुझे अधिक अच्छा लगा। कभी-कभी मेरे मन को यह शक छू जाता है कि ऐसा करते में मैंने कोई गलती तो नहीं कर दी। पर पूछूँ किससे ? मेरा अपना कौन है ? मैं बहुत बड़े ऐश्वर्य में लोट रही हूँ। परन्तु जिस पारिवारिक दरिद्रता का मुझे अनुभव हो रहा है उसकी पूर्ति धन से नहीं होती। इसीलिए कहती हूँ कि बहिन का दिन है मेरा। यदि एक बार उसे देखने की इच्छा मेरे मन में जागे तो क्या यह स्वाभाविक नहीं ?"

"यह सच है।"—पादरी बोला—"पर तुमने अपना चेहरा कभी दर्पण में देखा है क्या ?" कुछ भी उत्तर न दे सुन्दरी ने गर्दन झुका ली।

यह देख पादरी को अपने प्रश्न पर लज्जा हो आई। वह बोला—"इसके बावजूद तुम्हे ऐसा लगता है ? माफ करो। मैं ईसाई हूँ—मिशनरी हूँ। यह जानते हुए भी कि ईसाई-मिशनरी को बच्चा सौंप देने से वह ईसाई बना लिया जाता है, तुमने लता को मेरे हवाले किया। मैं तुम्हे धोखा नही दूँगा। अमानत मे खयानत नही करूँगा। हिंदू की तरह ही मैं उसे रख रहा हूँ। एक हिन्दू की तरह ही वह यहाँ छोटी से बड़ी होगी। इसके लिए तुम निश्चित रहो। पर यह बेशक बहुत जरूरी है कि तुम उसकी नजरो मे न पड़ो—"

"पर कम-से-कम एक बार—छिपकर ही······" सुन्दरी ने गिड़-गिड़ाहट भरे स्वर मे कहा।

"नहीं।"—स्वर मे अधिकार भरकर पादरी ने जताकर कहा—"यह संभव नही। मनुष्य का मन मैं खूब जानता हूँ और फिर तुम स्त्री हो। तुम्हारा मन वात्सल्य के लिए लालायित हो उठा है। वह तुम्हें कभी भी दगा दे देगा। तुम्हारे सारे प्राण उस लड़की मे उलझे हुए हैं। वह दिखी नहीं और तुम्हारा दिल तुम्हारे कब्जे मे न रहेगा।"

"यह सच है।"—सुन्दरी अपने आप ही बुदबुदा उठी।

"सच है न ?"—पादरी बोला—"तो मुझ पर विश्वास रखो। मैं उसका धर्म रख रहा हूँ—उसे मनुष्य बना रहा हूँ। तुम मेरे इस कार्य में बाधा मत बनो। तुम्हारे बाप की उसे थोड़ी भी जानकारी नही होनी चाहिए। देखते ही वह तुम्हे पहचान लेगी—एकदम जल उठेगी और फिर अलबत्ता बात मेरे बस से निकल जाएगी। इसलिए कहता हूँ कि उसके कल्याण के लिए मन को अपने कब्जे मे रखो। जाओ—अब उसके यहाँ आने का वक्त हो गया है—वह शायद आ ही रही होगी।"

दयनीय मुद्रा मे सुन्दरी दरवाजे की ओर देख रही थी। पादरी ने इतना जताया, फिर भी उसका मन कर रहा था कि लता आ जाय और मैं उसे देख लूँ। पादरी उसके मन की बात ताड़ गया और बड़ी कठोरता से बोला—"खड़ी क्यों हो ? अब जाओ यहाँ,से—जल्दी जाओ।"

सुन्दरी ने हैंडबैग खोला। उसमें से मनीबैग निकाला। मनीबैग से नोटों का एक पुलिंदा निकालकर पादरी के हाथ में दिया। पीछे मुड़कर देखती हुई वह बोली — 'अपनी ओर से आशा को मैंने दान दिया है बाबाजी— उसे बढ़ने दीजिए, खिलने दीजिए, अपने सौरभ से इस संसार को सुवासित करने दीजिए।' सहसा उसकी आवाज भर उठी। होंठों तक आई सिसकी को रोकती हुई वह बोली — 'दिल को समझाना बड़ा मुश्किल हो रहा है, बाबाजी! मैं अब छोटी नहीं हूँ। मातृत्व के स्वाद के लिए वंचित हो गई हूँ। लता मेरी बहन नहीं—सगी है मेरी ही बेटी है। मैं यह नहीं कहती कि आपको यह कल्पना न होगी कि उसे अपने से दूर करते हुए मुझे कितनी यातनाएँ हो रही हैं। आखिर भी माँ का हृदय है, यह मैं जानती हूँ और इसीलिए कहती हूँ।''

"अब कुछ मत कहो।" पादरी बोला — "एकदम यहाँ से चली जाओ। उसके आने से पहिले चल दो।"

पादरी ने उसे करीब-करीब धक्का देकर दरवाजे के बाहर किया ही था कि लता की पुकार उसके कानों में पड़ी। सुन्दरी का दिल बेचैन हो उठा। इस इरादे से कि पादरी की आज्ञा टालकर कम-से-कम क्षण-भर के लिए लता से मिल ही लूँ, वह मुड़ ही रही थी कि तभी पादरी उसे दूसरे दरवाजे की ओर घसीटता हुआ ले गया और मिशन हाउस के पिछवाड़े से उसे दरवाजे के बाहर सड़क की तरफ निकाल दिया। दरवाजे के बाहर सड़क पर भिखू सेठ खड़ा था। वह उसी के साथ आया था। वह जब भी कहीं जाती। तब केशवलाल अपने इस हनुमान को उसे साथ लगा देता था।

एक तरह से वह सुन्दरी को निष्ठा की दृष्टि से देखता था। जबसे वह मिशन हाउस में आने-जाने लगी थी तब से यद्यपि वह उसके साथ यहाँ आ रहा था, पर उसका रहस्य उसने केशवलाल से कभी नहीं कहा। इसीलिए सुन्दरी का भी उस पर विश्वास जम गया था। वह बोला— "गाड़ी का वक्त हो गया है। जल्दी चलिए।"

"तनिक ठहरो।" सुन्दरी बोली—"तुम आगे जाकर टिकट खरीदो। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे ही आती हूँ। मुझे तुम्हारे साथ कोई न देख पाये यही अच्छा है।"

भिखू सेठ चल दिया और एक-दो क्षण ठहरने के बाद सुन्दरी भी उसके पीछे-पीछे निकल पडी। कुमार को जो औरत मिशन हाउस से निकलती हुई दीखी थी वह यही थी।

सुन्दरी के बाहर निकल जाने के बाद दरवाजा बन्द करके पादरी लौटकर कमरे मे आया ही था कि लता आकर उससे लिपट गई। स्नेह-भरी आँखों से उसकी ओर देखते हुए पादरी ने पूछा—

"क्या है बेटी ?"

पादरी को अपनी बाहों से मुक्त करके लता एक ओर खडी हो गई और अपने हाथ से अपनी पोशाक को ऊपर से नीचे तक दिखाती हुई बोली—"देखिए।"

"देख लिया।"—पादरी बोला।

"कैसा लगता है आपको ? मैं कैसी दिखती हूँ इस पोशाक मे ?"

"बहुत अच्छी दिखती हो।"

"कैसे दिखते है मेरे ये कपडे ?"

"वाह, बहुत ही सुन्दर दिखते हैं।"

"आपको सुन्दर दिखते हैं।"—एकदम उदास होकर लता बोली—"पर लोगो को सुन्दर नही दिखते। वे मेरा मजाक उडाते हैं इन कपड़ों के कारण। मुझे नही चाहिए ये कपडे।"

"अच्छा ! अच्छा !"—पादरी हँसते हुए बोला—"तो क्या अब लहँगा और चोली पहनना चाहती हो ? मैं देवी से कह दूँगा और वह तुम्हारे लिए लहँगा और चोली ला देगी।"

"धुत ! लहँगा और चोली मुझे पसन्द नही।"

"फिर क्या कोट-पतलून पहनोगी ?"

"धुत !" नाक सिकोडती हुई लता बोली—"क्या लड़कियाँ भी-

कभी कोट-पतलून पहनती है ? मुझे साड़ी चाहिए।"

"अच्छा, यह बात है ?" पादरी बोला—"ठीक है। अभी देवी के पास खबर भेज देता हूँ कि तुम्हारे लिए वह कोई कुछ अच्छी अच्छी साड़ियाँ भेज दे।"

"कौन है यह देवी ?" पादरी के एकदम निकट उसके मुँह की ओर देखते हुए खिलखिलाहट-भरे स्वर में लता ने पूछा।

"बताइए न, कौन है यह देवी ?"

पादरी ने हँसना का उत्तर पुन दोहरा दिया "जो देवी है, वह देवी है। अब मैं उससे तुम्हारे लिए साड़ियाँ माँगूँगा और तुम देख लेना कि मेरी खबर पहुँचते ही वह साड़ियाँ भेज देगी।"

"क्या आप उससे एक और भी चीज माँगेंगे ?" -बड़े लाड़-भरे स्वर में लता बोली।

"हाँ, हाँ ! जरूर।"

"तो मेरे लिए एक माँ माँग लीजिए।"

पादरी की आँखें एकदम छलछला उठीं। देवी सब कुछ दे सकती थी यह वह जानता था। उसे लगा, लता की यह माँग भी पूरी करनी चाहिए। जो यह माँग पूरी कर सकती थी वह देवी दूसरी थी यह भी वह जानता था। शरणगाँव का वह जागृत देव-स्थान था। यह सोचकर कि उस देव-स्थान से प्रार्थना करने पर लता की माँ की भूख का शांत हो जाना असम्भव नहीं था, वह बोला—हाँ, हाँ, तुम्हारे लिए माँ भी देगी वह देवी।"

लता का चेहरा आनन्द से खिल उठा। कुमार की माँ है वैसी मेरी माँ नहीं—जब तक माँ नहीं, तब तक सारा ऐश्वर्य व्यर्थ है—उसका कोई मूल्य नहीं। कुमार की बातों से उसने यह जान लिया था। कुमार के ... बहुत मामूली होते। उसकी अनेक आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो ... इसके बावजूद वह जो कुछ था सो केवल इसलिए कि उसकी ... लता को मालूम हो चुका था।

इस विचार से कि अब उसे माँ मिलेगी, वह आनन्द में डूबी हुई हँसते-नाचते चल दी।

कुमार सीधा घर पहुँचा। उसका मन उदास हो गया था। उसने अपने ढंग से लता को सांत्वना देने का प्रयत्न किया था, परन्तु उससे स्वयं उसे ही संतोष न हुआ था। यद्यपि उसने उससे कहा था कि "जो मेरी माँ वही तुम्हारी माँ" पर कहने से ही कोई किसी की माँ नहीं हो सकती, यह वह जानता था।

कुमार को अपनी माँ पर बड़ा विश्वास था। गाँव के किसी भी बिना माँ के बच्चे की माँ यह हो सकती थी यह उसने प्रत्यक्ष देखा था। उसने यह भी देखा था कि गाँव का हर बच्चा उसकी माँ से उसी तरह बर्ताव करता था जैसे वह उनकी माँ ही हो और उसकी माँ भी उससे पुत्रवत् ही बर्ताव करती थी। इसलिए उसे लगा कि लता भी मेरी माँ को अपनी माँ क्यों न कहे?

कुमार की मुद्रा देख दुर्गाबाई कुछ बेचैन-सी हो उठी। गहन विचारों की छाया उसे अपने बेटे के चेहरे पर फैली हुई दिख रही थी। उसे देखकर वह बोली—"क्या बात है कुमार? क्या सोच रहे हो?"

"मेरे सामने एक एक बड़ा सवाल है, माँ!"—कुमार बोला—"उसे हल करने की कोशिश कर रहा हूँ।"

"कौन सा सवाल है? क्या गणित का?"

"वह गणित से भी कठिन है माँ।"

"ऐसा?" दुर्गाबाई बोली। कुमार गणित से डरता है और दूसरे विषयों की वह ज़रा भी परवाह नहीं करता यह दुर्गाबाई जानती थी। इसलिए वह बोली— "गणित से भी कठिन ऐसा कौन सा सवाल है वह?"

"आप लता को जानती हैं न?" कुमार ने दुर्गाबाई को अपनी भुजाओं में कसकर पूछा—"पादरी के घर जो रहती है? उसके माँ नहीं है। वह अपने लिए एक माँ चाहती है। उसकी एक देवी है। वह

देवी उसके लिए सब कुछ भेज देती है। पर उस देवी को उसने आज तक कभी देखा नहीं। माँ, देवी कैसी होती है? क्या देव के समान ही होती है वह?"

"हाँ"—दुर्गाबाई बोली—"देव के समान ही होती है देवी। जिस तरह देव किसी को नहीं दिखता, उसी तरह देवी भी किसी को नहीं दिखती···।" कुछ भी उत्तर देना चाहिए था इसलिए दुर्गाबाई ने यह कह तो दिया, पर लता की देवी का क्या मतलब है इसकी उसे भी ठीक से कोई कल्पना नहीं थी। उसे इतना ही पता चला था कि लता नाम की एक छोटी लड़की मिशन हाउस में पादरी के पास रहती है और अपना हिंदुत्व रखती है। व्यर्थ की पूछताछ करना उसे पसंद न था इसलिए उसने आगे उस समाचार की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया था।

कुमार को किस तरह समझाये यह वह सोच रही थी कि पादरी भी वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही उसका अभिवादन कर दुर्गाबाई बोली—"सुना बाबाजी, हमारे कुमार के सामने एक बड़ा सवाल खड़ा हो गया है। उसकी एक सखी को माँ की जरूरत है···"

"उसी काम के लिए तो मैं आया हूँ।"—पादरी बोला, "आप जानती ही होंगी कि एक हिन्दू लड़की मेरे पास रह रही है। उसकी एक देवी है जो उसकी हर माँग और इच्छा पूरी करती है। पर बेचारी लता माँ के लिए लालायित हो उठी है और उसकी देवी उसे माँ नहीं दे सकती। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ। माँ के प्यार के लिए लालायित हुई उस मासूम लड़की को क्या आप देंगी माँ? क्या आप हो जाएँगी उसकी माँ?"

"बड़ी खुशी से।" दुर्गाबाई बोली—"मुझे भी एक बेटी की चाह है ही। बेटे के लिए मैं बेचैन हो उठी थी—व्याकुल हो उठी थी, यह आप जानते हैं। भगवान ने मेरी पुकार सुन ली और उसने मुझे एक बेटा दे दिया। लगता है भगवान को मेरी दूसरी इच्छा भी पता चल गया। मेरी अपेक्षा शायद भगवान को ही यह अधिक मालूम था कि

मेरे पास बेटी की कमी है। इसीलिए उसने अब घर बैठे मुझे यह बेटी भेज दी। है न ?"

"सच है।" पादरी बोला—"मेरा काम हो चुका। देवी की प्रतिष्ठा रह गई। अब एक ही प्रार्थना करना चाहता हूँ। उस लड़की से उसका पूर्व-इतिहास न पूछिएगा और न उस लड़की को आपसे पूछने दीजिएगा। आपका जैसा कुमार है, इसी तरह यह लता है ऐसा मानकर ही चलिएगा। माफ कीजिए—अब मुझे और कुछ नहीं कहना और न मैं उस लड़की के बारे में आपको कुछ अधिक बता सकता हूँ।"

"ठीक है।"—दुर्गाबाई बोली—"अनजाने मेरे अभाव की पूर्ति हो गई।"

पादरी खुश हो गया। कुमार को भी खुशी हुई।

कुमार को लगा, मेरी बात रह गई। उसे इस बात का आनन्द हुआ कि अब जब पादरी बाबा स्वयं लता से कहेंगे कि मेरी माँ उसकी भी माँ है तब उसे विश्वास हुए बिना न रहेगा। इस आनन्द के आवेग मे वह माँ से बोला—"माँ फिर लता की माँ हो गयी न आप ?"

तीनो के ही नेत्र सजल हो उठे थे। उस पुण्यमय आँसुओ से लता का सबसे बड़ा अभाव साफ धुल गया।

अर्जुन को कर्तव्य पालन करने के लिए कही गयी भगवद्गीता उन उप-निषदों का सार है। उसने हिंदू धर्म की गड्डा-भर बातों का बोझ उन अल्पवयी बच्चों की बुद्धि पर लादने का पाप नहीं किया।

उन बच्चों की पढ़ाई के समय कभी-कभी पादरी भी हाजिर रहा करता था। उस पढ़ाई की वह मन-ही-मन बड़ी सराहना करता। गीता का तत्वज्ञान अशिक्षितों को समझाने की जिम्मेदारी आ पड़ने के कारण दुर्गाबाई को सीधी और सरल भाषा बोलने की कला अवगत हो गयी थी। इसलिए उसके वे प्रवचन पादरी को भी आकर्षक लगे बिना न रहते थे।

इस धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ शाला की शिक्षा भी शुरू थी। इसके अलावा दोनो बच्चे पादरी से अंग्रेजी भी पढ़ा करते थे। इस तरह दोनों बच्चे दिन भर किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त रहते थे। इस कारण गाँव मे जाकर, अन्य बच्चो से मिलने-जुलने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिल पाता था। उन दोनो पालकों का उद्देश्य भी यही था कि बच्चो को गाँव वालो से जहाँ तक सभव हो दूर ही रखा जाय। इन दोनो ही बच्चों का पूर्व-इतिहास था। वह इतिहास गाँव मे चर्चा का विषय हो गया था। दोनो पालको की यह इच्छा थी कि गाँव की गप्पों के जरिए वह इतिहास इन बच्चो के कानो में न पडे। इसीलिए उन्होंने दोनो की शिक्षा के कार्य-क्रम को बढाकर उन का सारा समय उलझा कर रखा था।

उधर बम्बई मे भी शकर ने मोहन की शिक्षा शुरू कर दी थी। शकर मोहन से आगे चलकर जो पुरुषार्थ कराना चाहता था उसके लिए मोहन को पढ़ाने की जरूरत थी। इसलिए उसने मोहन को ऐसी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जिससे वह व्यापारी समाज मे विचरण करने योग्य हो जाय।

शाला या कालेज मे भेजकर उसे डिग्रीधारी बनाने की झंझट में वह नहीं पड़ा। उसे यह पसंद न था कि शाला और कालेज में अनेक

ऊटपटांग विषयो को पढ़कर उसका बेटा अपना दिमाग बिगाड़ कर बेकाम हो जाय। उसने मोहन को सिर्फ बम्बई में प्रचलित अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, इन तीन भाषाओं का उत्तम ज्ञान करा दिया। वह इन तीनों भाषाओं को अपनी मातृभाषा की तरह धारा-प्रवाह बोल सके इतनी ही शिक्षा मोहन के लिए काफी है, ऐसी शंकर की धारणा थी और तदनुसार उसने मोहन को तैयार कर लिया था।

मुख्य शिक्षा तो उसे दी जा रही थी बम्बई पर आतंक जमाने की। उस नगरी को अपने कब्जे में कर लेने की। शंकर ने जान लिया था कि बम्बई के कितने ही बड़े-बड़े लोग जिनकी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी बम्बई में होने वाले अपराधों के सूत्रधार हैं। उसे यह ज्ञान हो गया था कि बम्बई में होने वाले सभी गुनाह मवाली या गुन्डे ही नहीं करते। बम्बई में भिखारियों के भी संघ हैं। भिखारियों को संगठित करके उनसे भी गुनाह कराये जाते हैं। भिखारियों के जरिये खबरें प्राप्त कर बड़े-बड़े डाके डाले जाते हैं। उन सब बातों का पता लगाने में शंकर ने पुलिस को भी मात दे दी थी। उसे बम्बई के प्रत्येक जुए के अड्डे की पूरी जानकारी थी। जिस जगह घुड़दौड़ के जुए होते हैं, वहाँ तीन-पत्तिया होता है और उन अड्डों पर क्या-क्या कार्रवाईयाँ चलती हैं इसका उसने विस्तार पूर्वक और ब्योरेवार ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बनारस के सन के नाम पर जो बड़ा भारी जुआ खेला जाता है और उस जुए को बम्बई के प्रतिष्ठित परदे की ओट गुनहगारी का स्वरूप किस प्रकार प्राप्त हो गया है? इसका पूरा अध्ययन करके उसने उस शास्त्र में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। सारांश यह है कि अल्प समय में ज्ञान प्राप्त करने के जो भी साधन उसकी परिस्थिति में उपलब्ध थे उन सब साधनों का उपयोग करके वह अपना एश्वर्य बड़ी तेजी से बढ़ा रहा था।

अपने इस ऐश्वर्य को बढ़ाते समय उसने पाप और पुण्य की परवाह कभी नहीं की। कुर्सी के किसी खटमल को मसलकर मार डालना और

घूमने-फिरते इन्सान की जान ले लेना, ये दोनों बातें उसकी निगाह में एक समान ही थीं। उसका सिद्धान्त था कि जो इन्सान पैदा होता है वह कभी-न-कभी जरूर मरता है। फिर मेरा ऐश्वर्य बढ़ाने में किसी इन्सान को अपनी जान क्यों कुरबान नहीं कर देनी चाहिए ? उसका मन कहता, जरूर कर देना चाहिए। उसके हर कार्य में मोहन उसका मददगार होता था। उसने किसी पराये आदमी पर विश्वास नहीं रखा। किसी भी स्त्री के जाल में वह कभी नहीं फँसा। किसी भी व्यसन के पाश में उसने अपने को उलझा कर नहीं रखा और इसलिए उसके द्वारा खेला गया हर दाँव सफल हो रहा था। केशवलाल और शंकर में यही फर्क था।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के मोह के वशीभूत होकर, केशवलाल अपने पीछे नाना प्रकार की झंझटें लगा रहा था। उन झझटों के विस्तार के कारण उसे अपनी मददगारों की संख्या बढ़ानी पड़ती थी। उन मददगारों को फोड़ कर उनके जरिये अपना काम करवा लेने का दाँव शंकर खेल रहा था। उसके काम में मदद करने वाले केशवलाल के ऐसे मददगारों को अपना काम हो जाने के बाद खटमल की तरह मार डालने में शंकर को कुछ भी न लगता था।

शंकर और केशवलाल की यह लड़ाई दूर से हो रही थी। अभी तक दोनों प्रत्यक्ष रूप में आमने-सामने नहीं आये थे। केशवलाल के अड्डे में घुस कर एक बार उस पर अपनी धाक जमाने का मोह शंकर से संवरण न हो सका। उसने वहाँ जाने का पक्का निश्चय कर लिया।

केशवलाल का जुए का एक अड्डा था। जहाँ वह था वह स्थान अत्यंत गुप्त रखा जाता था। उस अड्डे में रोज रात को लाखों का वारा-न्यारा होता था। तीन पत्तों के खेल से लेकर रोलट के चक्र तक जितनी भी जुए की किस्में हैं वे सब उस अड्डे में मौजूद थीं और उसके जरिये रोज लाखों रुपयों की रकमें एक हाथ से दूसरे हाथ में फेंक दी जाती थीं। इसी अड्डे में घुसने का शंकर ने निश्चय किया।

कुछ खास व्यक्तियों को छोड़कर और किसी भी व्यक्ति को इस अड्डे में प्रवेश न मिलता था। लेकिन केशवलाल के एक पिट्ठू के जरिये शंकर ने उस अड्डे में प्रवेश करने की हिमाकत जान ली। वह एक दिन वहाँ घुस पड़ा।

उस दिन वहाँ बड़ी भीड़ थी। वह रेस का दिन था। वहाँ दो प्रकार के लोग एकत्रित थे। एक वे थे जिन्होंने रेस में काफी रुपये कमाये थे और दूसरे वे थे जो रेस में अपना सब कुछ खो बैठे थे। दोनों को जुआ खेलने का जोश चढ़ा था। जुआ हो रहा था। खिलाड़ी दाँव-पर-दाँव लगा रहे थे। एक क्षण में राव से रंक और रंक से राव हो रहे थे।

इसी समय शंकर भी मोहन को साथ लिये अड्डे में पहुँचा। एक मेज पर उसने चुपचाप अपना कब्जा जमा लिया। खिलाड़ी तैयार ही थे। कोई किसी के परिचय की अपेक्षा न करता था और न कोई किसी के बारे में कोई पूछताछ करने की ही चिन्ता करता था। बस जो सामने आ जाए उसके साथ खेलना यही वहाँ हो रहा था। यही वहाँ का कायदा भी था।

शंकर खेलने लगा। मोहन एक तरफ खड़ा होकर हाथ की सफाई करने के लिए शंकर की मदद करने लगा। सुन्दरी और भीकू दोनों ही उस भीड़ में पहली मेज से आखिरी मेज तक घूम रहे थे। पादरी के घर आयी सुन्दरी और इस समय वहाँ घूम रही सुन्दरी में जमीन-आसमान का फर्क था। रणभूमि में चमकने वाली किसी रणदेवी की तरह वह इस जुए की समरभूमि में सब को प्रोत्साहित कर रही थी। पादरी के घर उसके चेहरे पर दुःख और कष्ट के भावों की जो छाया फैली हुई दिख रही थी, उसका इस समय उसके चेहरे पर कहीं नामो-निशान भी नजर नहीं आ रहा था। शराब पीकर बेकाबू हुई किसी मतवाली अभिमानवी की तरह वह उस जनसभा में घूम रही थी। पादरी यदि इस समय उसे देख लेता तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते।

शंकर मस्त होकर खेल रहा था। उसकी मस्ती में ही सफलता की

सारे बैठकखाने को लड़खड़ाकर गिरा देगी, ऐसी केशवलाल की आवाज उसके कानों में पड़ी—"ठहरो !"

शंकर खेल रहा था—खेले हुए ताशों को समेटने के लिए हाथ आगे बढ़ा रहा था। तभी केशवलाल तीर की तरह उसके पास गया और डाँटकर बोला—"ठहरो ! पत्तों को हाथ मत लगाओ। मैंने देख लिया।"

"क्या देख लिया ?"—उतनी ही ऊँची आवाज में शंकर ने पूछा।

"तुम्हारी चालाकी !" केशवलाल शंकर के सामने खड़ा होकर बोला—"तुम्हारी हाथ की सफाई। इसमें शक नहीं तुम्हारे हाथ की सफाई सराहने योग्य है, काबिले तारीफ है। हाथ की सफाई दिखाने वाले लोगों का ही यह अड्डा है। परन्तु हाथ की सफाई दिखाने वाले इन सब लोगों की आँखों में धूल झोंककर खेलने वाला तुम जैसा पक्का खिलाड़ी मैंने इससे पहिले नहीं देखा था।"

यह देखकर कि शंकर उद्दण्डता से हँस रहा है, केशवलाल बोला—"हँसो नहीं। तुम्हें इसकी कल्पना न थी कि इतनी पक्की हाथ की सफाई का भण्डाफोड़ देने के लिए मेरे पास उतनी ही पैनी नजर न होगी, इसीलिए तुमने यहाँ आने की हिम्मत की।" हाथ का खेल छोड़कर सब लोग उनके आसपास एकत्रित हो गये थे। उन पर एक बार निगाह दौड़ाकर केशवलाल बोला—"शर्म नहीं आती तुम लोगों को ? एक पराया आदमी यहाँ घुस आता है—देखते-देखते तुम्हारी जेब से पैसे निकाल लेता है और तुम हो जो चुपचाप सिर्फ खेल रहे हो ! अभी तक तुमने इस बदमाश को नहीं पकड़ा ?"

"खामोश !"—शंकर चिल्ला उठा—"कौन है बदमाश ?"

"तुम" केशवलाल हँसते हुए बोला- "तुम और मैं—हम दोनों ही बदमाश हैं। आज दस साल से मैं तुम्हारी हलचलें देख रहा हूँ। मेरे हर काम में तुम हाथ डाल रहे हो—साँप से खेल रहे हो। तुम्हारी बीन से मेरे कुछ पिट्ठू भले ही फँस गये हों, पर मैं धोखा नहीं खाऊँगा। मेरे कामों को तुमने अनेक बार बिगाड़ा। मेरे कामों को उलटाकर तुम

मालामाल हो सके। फिर भी यह सब मैंने बर्दाश्त किया। ऐसे [illegible] काम किराए देने में इस केशवलाल का मन भी थोड़ा नहीं हुआ, परन्तु अब सुन्दरी का मन बहुत आगे बढ़ चुका है। वह रात-दिन सुन्दरी इससे बाहर हो रही थी। मरते-मरते मेरी इस दिल की गुफा में मरी...''

''इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ।'' शंकर बोला—''बात-दुबारा आया हूँ।''

''अच्छा, यह बात है?'' और थोड़ा हँसकर केशवलाल बोला—''यह बड़ा मँहगा पड़ेगा तुझे। मेरा ही शासन चलता है इस बम्बई में—यहाँ मैं ही शासन करूँगा। दूसरे किसी की यहाँ चलना नहीं—यहाँ मैं ही शासन करूँगा—दो का यहाँ काम नहीं। दोनों के लिए छोटी है यह बम्बई। दोनों में कोई एक ही...''

''कोई एक ही न...?'' शंकर बोला—''तो वह एक मैं हूँ, केशवलाल नहीं।''

''अच्छा, यह बात?'' केशवलाल बोला। दोनों ही दो क्रूर शेर की तरह एक दूसरे पर टूट पड़ने के लिए एक दूसरे की ओर क्षण-भर देखते रहे। अपनी नजर न हटाकर, बेफिक्री से शंकर ने मेज पर पड़े नोटों को समेटा और चुपचाप अपनी जेब के हवाले किया। इसी समय...

इसी समय धड़ाका शुरू हुआ। केशवलाल का घूँसा शंकर की कनपटी पर पड़ा और उसके साथ ही शंकर ने भी मेज को आड़ा करके दोनों के बीच में गिरा दिया। बाकी के लोग एकदम पीछे हट गये। बाज के वेग से शंकर केशवलाल पर टूट पड़ा और उसके एक घूँसे ने केशवलाल नजदीक की दीवाल पर जा गिरा। जब केशवलाल ने पिस्तौल निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, तब सुन्दरी ने एकदम जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। ''नहीं-नहीं!'' वह बोली—''यहाँ पिस्तौल की आवाज नहीं होनी चाहिए ...खून नहीं होना चाहिए।'' केशवलाल ने पिस्तौल पुनः जेब में डाल लिया। एक-एक कदम रखता हुआ वह शंकर के आ रहा था। इसी समय भीखू उसके कान से लगकर बोला—

"दूसरा भी उपाय है—इससे भी अच्छा—इस समय छोड़ दो उसे—अभी जाने दो उसे, किसी दिन बाला-बाला—हूँ !"

शंकर हँस रहा था । उसके सामने जाकर केशवलाल बोला—रास्ता नापो यहाँ से । यहाँ फिर कभी न आना । समझे ?"

एक कदम आगे बढ़ शंकर हाथ आगे बढ़ाकर बोला - शेक हैंड्स, माई फ्रैंड ।" (हाथ मिलाओ, मेरे मित्र)

केशवलाल ने उससे हाथ नहीं मिलाया । यह देख शंकर तिरस्कार से हँस पड़ा ।

शंकर की पीठ थपथपाकर केशवलाल बोला—"शाबास, मर्द हो तुम । याद रखो, मैं तुम्हारे पहले का हूँ—तुम्हारा उस्ताद हूँ । जाओ अब । जय राम जी की, फिर मिलेंगे—समझे ? फिर मिलेंगे !"

एक सलाम ठोककर शंकर वहाँ से निकल पड़ा । उसके पीछे-पीछे मोहन भी चल पड़ा ।

सुन्दरी सारी दुनिया को भूल गई थी । शंकर के पीछे-पीछे जा रहे मोहन पर उसकी नजर टिक गई थी । वे बाहर चले गये थे, फिर भी वह दौड़कर बाहर की सीढ़ी पर गई और सड़क के अस्पष्ट प्रकाश में उसने मोहन को एक बार जी भर के देख लिया ।

जिस बैठक में अभी-अभी बड़ा कोलाहल मचा हुआ था अब वहाँ एक क्षण में सर्वत्र सन्नाटा छा गया ।

ईर्ष्या और अभिमान के कारण शंकर यद्यपि दुष्कर्म कर रहा था, फिर भी उसके हृदय के भीतर दबी हुई सात्विक वृति का अंकुर कभी-कभी उसके अनजाने प्रस्फुटित हो उठता था। जब संकट में फँसा कोई व्यक्ति उसके पास आता और उसे पूरा यकीन हो जाता कि सचमुच संकट में है, तो वापसी की कोई अपेक्षा न करके शंकर उसकी मदद कर दिया करता।

एक दानी के नाते बम्बई में केशवलाल का भी बड़ा नाम था परन्तु उसकी दानशूरता दिखावटी अधिक थी। लड़ाई के जमाने से। वह दानी के नाम से मशहूर हुआ था। वार फंड में उसने उस समय एकदम पच्चीस हजार रुपये दिये थे।

यह ख्याति उसे मँहगी पड़ने लगी थी। धर्म के नाम पर झोली लेकर आनेवाला प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्ता उसके पीछे पड़ने लगा और अपनी पुरानी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए उसे भी अपनी थैली का मुँह ढीला कर देना पड़ा था।

अनेक शिक्षा-संस्थाओं को उसने दान दिया था। व्यायाम-शालाएँ बनवा दी थीं। मजदूरों का आन्दोलन करने वालों को भी समय-समय पर उससे कुछ-न-कुछ मिलता ही रहता था। पर वह सट्टेवर्ग में कभी कुछ न देता। इसी तरह पुराने मंदिरों के जीर्णोद्धार की झंझट में भी वह कभी नहीं पड़ा। हाँ, सरकार द्वारा निकाले गये किसी भी फंड में मुक्त-हस्त से देने में अलबत्ता उसने कभी इंकार नहीं किया।

यही कारण था कि सरकार में उसका बड़ा प्रभाव था। भिन्न-भिन्न सरकारी अफसरों को हर दिवाली और होली पर उसकी तरफ से उपहार भेजे जाते थे। बड़े दिनों के त्योहार पर हर गौरांग प्रभु के घर उसकी डाली पहुँचती थी।

शंकर को इन सब बातों से घृणा थी। ऐसे सार्वजनिक चंदों में उसने कभी एक पैसा भी नहीं दिया। परन्तु व्यक्ति को दान देने में वह कभी पीछे न हटा। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि उसे जब पता लगता कि कोई व्यक्ति संकट में है और वह व्यक्ति उसके परिचय का भी न होता, फिर भी वह स्वयं उसके पास जाता, उसके संकट को बिल्कुल सच्चा समझता, तब उसे सहायता देता। अनेक बार उसने गुप्त दान भी दिये थे। अतएव उसकी दानशीलता स्वयं अपने संतोष के लिए थी। केदारलाल की तरह ख्याति या वसीला प्राप्त करने की लालसा से वह कभी कोई दान न दिया करता।

इसी तरह संकट में फँसा हुआ एक मनुष्य उसके पास आया था। उसे संकट-मुक्त कर देने के कारण वह एक तरह से शंकर का अनुयायी बन गया था। जो काम खुले आम हो सकते थे, वही काम शंकर उससे लिया करता था, परन्तु अपने गुप्त कार्यों का शंकर ने उसे जरा भी पता न चलने दिया था।

उस दिन शंकर जब बाहर से घर लौटा तो देखा कि वह व्यक्ति बरामदे में सोया हुआ है। उसे लगा, वह उसकी प्रतीक्षा करते-करते सो गया होगा। वह वहाँ आकर शायद बड़ी देर से बैठा होगा। क्योंकि शंकर के आते तक उसे नींद लग गयी।

शंकर ने जब उसे जगाया तब क्षण-भर के लिए घबड़ाकर वह उसकी ओर देखता रहा। उसके मुँह से शब्द भी बाहर नहीं फूट रहा था। यह देखकर शंकर ने पूछा—"कब आये थे रामलाल? क्या काम है?"

उसके चरण छूकर रामलाल बोला—"मेरा ही खास काम है,

महाराज ! इसी के लिए आया हूँ । आपके सिवा मेरा दूसरा सहारा नहीं । बड़ी देर से आकर आपकी राह देख रहा था । सोचा था अब आखिर तो आपके पास आया हुआ लौटूँगा, पर आपकी राह देखते देखते मेरी आँख लग गई ।

"जल्दी बोलो ।" -शंकर बहुत उतावला होकर बोला—"क्या काम है ?"

शंकर के पीछे-पीछे मोहन भी आ गया था । वह एक तरफ खड़ा होकर दोनों की बातें सुनने लगा ।

"क्या बताऊँ महाराज !" रामलाल बोला—"गले में फाँसी लगी है । आज तक इतनी सेवा की आपकी और आखिर अब मैं तबाह हो गया ।"

"जल्दी बताओ जी—बात को ज्यादा घुमाओ नहीं ।"

"सेठ स्वरूपचंद जी से आपने कह दिया था न ?"

"क्या कहा था तुमने मुझसे—?"

"अपने उस कर्ज के बारे में ।"

"हाँ-हाँ समझा । हाँ, तो उसने क्या किया ?"

"कर्ज की वसूली में वह मेरे घर के सारे जेवर ले गया ।"—यह कहते-कहते रामलाल एकदम सिसक उठा ।

"कर्ज की वसूली में तुम्हारे जेवर ले गया !" शंकर माथे पर सिकनें लाकर बोला—"पर मैंने उसे छूट देने को कहा था !"

"महाराज, दस्तावेज पर मेरे दस्तखत जो थे । दस-बारह वर्ष पहिले जो रकम उससे कर्ज में ली थी, वह ब्याज सहित दस गुनी हो गई और अब मैं बिल्कुल तबाह हो गया, महाराज !"

"अच्छा, यह बात है ?" शंकर चिढ़कर बोला—"क्या उस सेठ को अपने शब्दों की कोई कीमत नहीं ? अभी कहाँ है वह ?"

"यही तो मुश्किल है ।" रामलाल बोला—"सोचा था जाकर उससे कहूँ और उसके बँगले तक गया भी था, पर वह बम्बई से आज ही

बाहर चल दिया है। बँगले में ताला लगाकर चला गया है।"

शंकर के माथे की सिकनें और गहरी हो गईं। क्षण-भर सोचकर वह बोला—"कल तुम्हारे जेवर तुम्हें मिल जाएँगे।"

"पर उसका बँगला बन्द है, महाराज!"

"अरे भाई, पर वह अपनी तिजोरी से उठाकर नहीं ले गया न?"

"जी नहीं, सब सामान जहाँ-तहाँ रखा है। पिछली बार हम लोग उसके घर गये थे उस समय उसके बँगले की जो व्यवस्था थी, बिल्कुल वही इस समय भी है। मेरे सामने ही उसने बँगले के दरवाजे बन्द किये और मुझे धक्का देकर बाहर निकाला। फिर ताला लगाया और स्टेशन चल दिया। मैंने गिड़गिड़ाकर उसके चरण भी पकड़े, बहुत रोया-गाया, पर उसने एक न सुनी।"

"ठीक है। रामलाल तुम जाओ अब, और कल यहाँ आकर अपने जेवर ले जाना।"

"पर" रामलाल कुछ कहना चाह रहा था, तभी उसे रोक कर शंकर बोला—"पर-वर कुछ नहीं। तुम्हारे जेवर कल तुम्हें मिल जाएँगे फिर तो हो गया न? जाओ।"

रामलाल ने फिर शंकर के चरण छुए और वह चल दिया।

भीतर मोहन अपने कपड़े उतार रहा था कि शंकर उससे बोला—"ठहरो मोहन, अभी कपड़े मत उतारो। हमें इसी समय बाहर चलना है।"

"क्या रामलाल के काम के लिए?"

शंकर के हुंकारी भरते ही मोहन बोला—"मेरा ख्याल है, स्वरूपचद के आने तक हमें रुक जाना चाहिए।"

"नहीं।" शंकर बोला—"तुमने सुना नहीं, मैंने उससे क्या कहा है? स्वरूपचन्द की चोटी मेरे हाथ में है। मैंने उससे रामलाल को छूट देने के लिए कहा था। उसने स्वीकार भी कर लिया था और अब अपना वचन उसने यूँ भंग कर दिया।"

"पर मैं कहता हूँ कि इस संसार में हमें रहने भी अच्छा ही क्या है ? रामलाल जाने और उसका काम जाने ! मरे साला रामलाल !" मोहन बोला ।

"बेवकूफ हो तुम मोहन !" शंकर बोला, "मैं रामलाल को वचन दे चुका हूँ । क्या तुमने सुना नहीं ? कल उसे उसके जेवर मिलने ही चाहिए ..." यह देखकर कि मोहन अपने कमरे में जा रहा है शंकर बोला—"सुनो और कपड़े फिर से पहन लो । औजारों का झोला हाथ में लो और तुरन्त मेरे साथ चलो । इस काम पर तुम्हारे सिवा और कोई भी नहीं जायगा मेरे साथ ।"

कुछ भी न बोल, मोहन ने फिर से कपड़े पहिने । औजारों का झोला कन्धे पर टाँगा । शंकर देख रहा था कि मोहन नाराजगी से साथ चल रहा है, परन्तु उसका जाना था कि जब एक बार वह कदम बढ़ा देता था तो उसे किसी भी परिस्थिति में कभी वापिस नहीं लेता था ।

दोनों कार में रवाना हुए और मालाबार हिल पर स्वरूपचंद सेठ के बंगले के नजदीक पहुँचे । बंगले से काफी दूर उन्होंने अपनी कार छोड़ दी और लौटकर पैदल पीछे आए ।

बंगले के चारों तरफ सन्नाटा था । सर्वत्र अन्धकार का साम्राज्य फैला हुआ था । उन्होंने अहाते के भीतर जाकर बड़ी सावधानी से आहट ली । वहाँ परिंदा भी पर नहीं मार रहा था । यह देख औजारों
दद से शंकर ने बँगले का ताला खोला ।

वह बँगले के भीतर गया । टार्च की रोशनी में उसने बँगले का कोना छान डाला । जब उसे पूरा यकीन हो गया कि कहीं कोई
े नहीं है, तब वह उस कमरे में घुसा जहाँ तिजोरी रखी थी ।
रों की मदद से उसने तिजोरी खोली और रामलाल के जेवरातों का
बाहर निकाला । वह उस डिब्बे को मोहन के हाथ में दे ही रहा
तभी...

ारा कमरा एकदम बिजली की रोशनी से जगमगा उठा । शंकर

के हाथ से डिब्बा छूटकर गिर पड़ा।

उसने पीछे मुड़कर देखा। पुलिस ने उसे चारों तरफ से घेर लिया था। पुलिस इन्सपेक्टर उसकी ओर पिस्तौल तानकर खड़ा था और अचंभे की बात यह थी कि पुलिस इन्सपेक्टर के नजदीक रामलाल भी मौजूद था।

बड़ी जोर से गर्जकर शंकर ने रामलाल की ओर देखा, पर वह विवश हो गया था। उसे अपनी जगह से टस होने का भी मौका न था।

उसके नजदीक बढ़ते हुए पुलिस इन्सपेक्टर बोला, कहिए सेठ शंकर लाल जी, मिज़ाज तो अच्छे हैं? आज खूब पकड़े गये आप। आज तक आपने हमें परेशान कर रखा था। सज्जनता का परदा ओढ़कर आप बम्बई में गुनाहों की धूम मचा रहे थे और शान से सीना तानकर घूम रहे थे, पर आज तिजोरी तोड़ते हुए रंगे हाथ पकड़ लिये गये।"

इन्सपेक्टर की यह बकवास शंकर के कानों मे नहीं पहुँच रही थी। उसकी निगाह लगातार रामलाल पर टिकी हुई थी।

"तुम!" ओंठ चबाता हुआ शंकर बोला, "तुम इन लोगों से मिले हुए हो! बेईमान! मैंने तुम्हारे लिए ..." यह देखकर कि रामलाल घबरा उठा है, शंकर जोर से हंसने लगा। जब से पिस्तौल उसकी ओर तना था तब से वह अपने दोनों हाथ ऊपर ही उठाये हुए था। यह देखकर कि इन्सपेक्टर उसके बिलकुल नजदीक आ गया है, पुलिस पार्टी के उस पार देखता हुआ शंकर एकदम चिल्ला उठा, "अरे अरे! यह क्या कर रहा है। कहीं गोली मत चला देना। मुझे लग जायगी। पिस्तौल पीछे से लो।"

इस कल्पना से कि शंकर का कोई साथी पीछे से गोली चला रहा है, इन्सपेक्टर चौंक पड़ा और उसने मुड़कर पीछे देखा। उसके साथ सारे पुलिस वाले भी पीछे मुड़ पड़े थे। इस मौके से लाभ उठाकर शंकर ने झपटकर इन्सपेक्टर के हाथ से पिस्तौल छीन ली और बिजली के वेग से खिड़की की राह बाहर कूद पड़ा। इसी समय मोहन ने बँगले

का मेन स्विच, जो उसने पहिले से ही देख रखा था, एकदम ऑफ कर दिया। बँगले में सर्वत्र अन्धकार छा गया। मोहन भी स्विच बन्द करके नौ दो ग्यारह हो गया।

पुलिस वाले टार्च की फीकी रोशनी में अंधों की तरह अंधेरे में ही गोलियाँ चलाने लगे। वहाँ बड़ी गड़बड़ मच गयी। एक सीटी बजी और बँगले की पुलिस बाहर निकल पड़ी।

इस गड़बड़ी के बीच मोहन दौड़कर अपनी कार के पास पहुँचा और उसने कार स्टार्ट कर दी।

शंकर बहुत पहिले ही भाग गया था। पर वह किस तरफ गया होगा इसका मोहन को कोई अन्दाज न था। वह वहीं रुके या चला दे इसका निर्णय करने के लिए समय न था। इस विचार से कि मोटर स्टार्ट करने से पुलिस मेरा पीछा करेगी और इस तरह पिताजी को भागने का मौका मिल जायगा, उसने मोटर स्टार्ट कर दी थी।

मोटर में जाते समय गोलियाँ दगने की आवाज उसे सुनाई पड़ी। हयूबरोड से मोटर सीधे लेकर वह फिर वापिस बेकर्स पार्क से [illegible] बँगले के पास आया। उस समय बँगले में सर्वत्र सन्नाटा था। कुछ मोटर बँगले से दूर रखकर वह पैदल ही वापिस बँगले के अहाते में आया। उसने चारों तरफ घूमकर देखा। उसे कहीं कोई नजर न आया। कहीं से किसी की आहट भी उसे न मिली।

वह बड़े संकट में पड़ गया था। पिता जी का क्या हुआ, यह मालूम होने का कोई रास्ता नहीं था। किसी से पूछताछ करे यह भी संभव न था। मोटर पर जाना भी खतरे से खाली न था। इसलिए वह उसी तरह इधर-उधर बम्बई की सड़कों में चक्कर काटता रहा।

स्मगलिंग की बातों में उसे पहले रस आ गया था। इसीलिए घर से निकलते समय उसने पिता से रास्ता माँगा था। वास्तविकता की उसे कोई कल्पना न थी। क्योंकि वह सारा [illegible] का [illegible] था।

पूँजी का इन्वेस्टमेंट कर चुकने के बाद जिस समय [illegible] ने देखा

लाल से यह जानना चाहा कि फोन किस विषय का किया है और मामला क्या है, उस समय वह एकदम चिढ़ उठा और बोला—"देखो सुन्दरी, तुम्हे फिर से बताये देता हूँ। जितना मैं कहूँ उतना ही सुनती जाओ। कभी मुझ से स्वद होकर कुछ न पूछा करो। किसी मामले में कोई मुझसे प्रश्न पूछे तो यह मुझे कतई पसन्द नही। जिस समय कोई बात कहने योग्य होगी, उस समय वह मैं तुमसे तुम्हारे बिना पूछे ही कह दिया करूँगा। तुम जानती हो कि मेरे अनेक मामले बडे नाजुक होते हैं। उसके विषय मे थोडा सा भी बोलना खतरनाक होता है ···"

"परन्तु अभी तो वैसी कोई बात नही थी।" सुन्दरी बीच ही मे बोल उठी—"आपने पुलिस को खबर दी। मैंने यह साफ-साफ सुना कि आपने उनसे किसी को कहीं जाकर पकड़ने के लिए कहा। पुलिस से आप ने जो कहा क्या आप मुझसे नहीं कह सकते? यदि आप मुझसे कह दें तो कौन मैं इस आधी रात को कही जाकर आपके रहस्य का उद्घाटन कर दूँगी?"

"बस, बस, अब अधिक मत बोलो।" केशवलाल बोला—"ऐसे नाजुक मामले मे कोई अपनी विवाहिता पत्नी पर भी विश्वास नही रखता और तुम तो प्रकट है, कि मेरी रखैली हो यानी एक नौकरानी हो। मेरा काम हुक्म देना है और तुम्हारा कर्तव्य है मेरे हुक्म को चुपचाप मानना, इसमे अधिक बात कहने का तुम्हे कोई अधिकार नही। समझी?"

सुन्दरी के कोमल मन को केशवलाल की यह बात चुभ गयी। वह एक रखैली थी, यह सच है, पर इससे पहले केशवलाल ने उसके सामने 'रखैली' शब्द का उच्चारण कभी नही किया था। आज आनन्द के आवेश मे उसके मन का संतुलन खो गया था, इसीलिए असावधानी मे मन की बात अचानक कह बैठा था।

केशवलाल से सुन्दरी का कोई बड़ा प्रेम था, यह बात नहीं, परन्तु गोवा की वेश्याओ की असली एकनिष्ठा के अनुसार उसने कभी भी केशव लाल से प्रतारण नहीं की थी। वह कोई बाजारू वेश्या नहीं थी। अपने

कुल के प्रति उसे अभिमान था। उस वेश्या के ईमानदार कुल की बेइम-
सान की भी कोई जानकारी नहीं थी इसीलिए उसे बड़ा बुरा लगा।

उसे लता की याद हो आई। उसे इस बात पर बड़ा अभिमान हुआ कि इस पाप की खाई में गिरने से पहले उसने लता को अपने से दूर कर दिया। कुल-धर्म का अनुसरण कर वह स्वयं जिस अनीति की खाई में पड़ गई थी उस तरह लता न पड़े, इसीलिए उसने उसे अपने से दूर रख दिया था। ऐसा करते समय उसे अत्यंत यातनाएँ हुई थीं। अपनी इकलौती बहन का विरह असह्य हो उठा था।

उसे लगा, मेरी माँ मर गयी, यह अच्छा ही हुआ। जिस परिस्थिति में उसने इस समय लता को अपने से दूर ले जाकर रखा था, वह परिस्थिति अथवा उस परिस्थिति का मूल उद्देश्य उसकी माँ को बिलकुल ही स्वीकार न होता। कुलाचार की थोथी भावना के कारण वह लता को इस धन्धे के लिए जो अनुकूल होती, ऐसी ही शिक्षा देती। इसीलिए माँ की मृत्यु का उसे दुख न हुआ।

केशवलाल को वह देव की तरह पूज्य मानती थी। वह अघोरी था, बदमाश था, शरीफ गुंडा था, यह वह जानती थी। इसके बावजूद उसने अपना व्रत नहीं छोड़ा।

उसे लगा, इस एकनिष्ठता का फल मुझे आखिर क्या मिला? क्या केशवलाल मुझ पर विश्वास भी न करे?

केशवलाल की बातों पर वह विचार कर रही थी कि तभी टेलीफोन की घन्टी बजी। भीकू ने यह खबर दी कि पुलिस ने शंकर को गिरफ्तार कर लिया है और वह जेल में बन्द है। उसके मन में आया कि पूछे, मोहन भी गिरफ्तार हो गया है क्या? तुरन्त इस भय से कि भीकू को शायद कुछ शक हो जाय, उसने आत्मसंयम किया।

उसके मन को लगातार चिंता लगी थी—कहीं मोहन भी न

सारी रात भटक रहे मोहन ने सुबह के अखबार में समाचार पढ़ा कि शंकर पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया है और वह जेल में बन्द है। इस समाचार को पढ़ कर वह एक तरह से निश्चिन्त हो गया। जब वह बँगले पर पुनः कार लेकर गया था और वहाँ शंकर से उसकी मुलाकात न हो पाई थी, उस समय उसके मन में यह चिन्ता पैदा हो गई थी कि उसके पिता का क्या हुआ होगा? क्या वह कहीं फरार हो गया, या पुलिस की पकड़ में आ गया। अखबार की इस खबर से उसकी यह चिन्ता मिट गयी। इसी कारण उसने एक प्रकार से सन्तोष की सांस ली। खिड़की से कूदने के बाद नीचे खड़े पुलिस दल ने शंकर को पकड़ लिया था। यही नहीं, बल्कि उसे पकड़ने में पुलिस के लोगों में जो हड़बड़ी मच गई थी उसी कारण मोहन को कार लेकर भाग जाने का मौका मिला था। पुलिस द्वारा पकड़े जाते समय शंकर ने अपनी पिस्तौल से दो-चार गोलियाँ दागी थीं जिनके फलस्वरूप पुलिस के दो जवान अपनी जान से हाथ धो बैठे थे। इसलिए शंकर पर चोरी के साथ-साथ हत्या करने का भी अभियोग लगाया गया और उस पर मुकदमा चला।

मोहन जानता था कि उसका घर पुलिस वालों ने घेर लिया होगा और उस घर पर अब कई दिनों तक पुलिस की निगरानी रहेगी। इसीलिए कुछ दिनों तक वह उस मुहल्ले में गया ही नहीं। उसके और उसके पिता के रूप-रंग में विशेष समानता होने के कारण उसने सोचा कि कुछ दिनों तक किसी गुप्त स्थान में छिप जाना उसके लिए

अत्यन्त आवश्यक है इसलिए वह गुप्त रूप से वहीं रहने लगा।

शंकर का मुकद्दमा शुरू हुआ। उस मुकदमे में अपना बयान देते समय शंकर ने मोहन का कहीं नाम तक न लिया। उसने उसे साफ़ बचा दिया। जब बात निकली कि बंगले में उसका एक साथी भी था तब किसी दूसरे व्यक्ति का नाम लेकर शंकर ने न्यायालय को सन्तुष्ट कर दिया। पुलिस वाले भी उस समय मोहन को ठीक से नहीं देख पाये थे। इसी लिए न्यायालय ने शंकर की बात मान ली और पूरे मुकदमे में मोहन का कहीं नाम ही नहीं आया। और फिर मोहन पर पहले भी पुलिस की कोई निगरानी नहीं थी जैसी कि शंकर पर रहती थी।

इससे मोहन को बड़ी हिम्मत आगयी और वह सबके सामने अपने घर में खुल्लमखुल्ला रहने को चला गया। जब वह पुनः अपने घर रहने को आया तब उसे यह दिखाई दिया कि पुलिस ने उसके घर की कस कर तलाशी ली होगी। वे बाप-बेटे हमेशा बड़े सावधान रहते थे। इस करण सबूत के लिए काम आने लायक एक भी बात पुलिस को उस घर में न मिली थी।

शंकर का मुकद्दमा कई दिनों तक चलता रहा। पुलिस को इस मुकद्दमे में शंकर के खिलाफ सबूत जुटाने में केशवलाल की पूरी मदद थी, इसलिए पुलिस को शंकर पर भिन्न-भिन्न आरोप लगा कर उन्हें साबित कर देना बड़ा सुलभ हो गया था।

उस पर भिन्न-भिन्न अभियोग के अलग-अलग मुकद्दमे चल रहे थे और हर मामले पर उसे सजा हो रही थी। उसे आखिरी जो सजा मिली उसमें बाकी की सारी सजाएँ विलुप्त हो गई। वह सजा थी फाँसी की। फाँसी इसलिए कि उसने पुलिस के दो जवानों का खून किया था और वह खूनी साबित हो चुका था।

जिसे फाँसी की सजा मिलती है वह दया की याचना कर सकता है ऐसा कानून है, परन्तु शंकर ने वह कमजोरी नहीं दिखाई। एक दृष्टि त व्यक्ति था। यह देखते ही कि उसके ऊपर

लगाये गये सारे अभियोग साबित हो रहे हैं उसने अपना बचाव करना बिलकुल छोड़ दिया। बचाव करने का प्रयत्न करके कोई सफलता न मिले और अन्त में कुत्ते की मौत मरने की अपेक्षा मर्द की तरह गुनाह स्वीकार करके फाँसी पर झूल जाना उसे अधिक अभिमानास्पद लगा।

पर हर मुकद्दमे में वह यह कोशिश जरूर करता रहा और यह सावधानी बरतता रहा कि एक भी मामले में मोहन का नाम न आने पावे। केशवलाल की तरफ से पुलिस को मदद करते वक्त भिकू ने भी मोहन को हिसाब में न लिया था। पहले से ही मोहन शंकर की अपेक्षा अधिक सावधानी से रहा करता था। शंकर गलती कहाँ कर रहा है, इसकी उसे ठीक कल्पना रहा करती थी। रामलाल के कहने पर स्वरूपचंद के बँगले जाते समय जितनी विनम्रता से उसने पिता को सावधान किया था, उतनी ही विनम्रता से पहिले भी अन्य कई मौकों पर वह उसे धोखे *की सूचना दे दिया करता था, परन्तु अविचार से शंकर हमेशा उसकी* सूचनाएँ ठुकराता रहा। पहले से ही शंकर अविचारी था। परन्तु अविचारी होने के बावजूद हर काम में सफलता मिलते रहने के कारण उसकी अपनी यह धारणा हो गयी थी कि सफलता उसे अविचार के कारण ही मिलती है। जहाँ तक सम्भव हो सकता था मोहन काफी समय से उसे हमेशा यह सुझाव देता था कि ऐसे मामलों में किसी पर दया नहीं करनी चाहिए। किसी से स्नेह नहीं बढ़ाना चाहिए और शंकर ने, चूँकि मोहन कहता था, सिर्फ इसीलिए उन सुझावों पर कोई ध्यान न दिया था। इसी का प्रायश्चित इस समय उसे मिला।

फाँसी की सजा दूसरे ही दिन अमल में आने वाली थी। जब शंकर से पूछा गया कि उसकी अन्तिम इच्छा क्या है तब अपनी नित्य की उद्दंडता के अनुसार वह बोला--"मेरी अन्तिम इच्छा? मेरी अन्तिम इच्छा क्या पूरी कर सकोगे? मेरी सभी इच्छाएं अतृप्त रही हैं। मेरा जीवन समाप्त हो गया है। अब वे पूर्ण होंगी यह सम्भव नहीं। कोई इन्हें पूरा करे ऐसा भी मुझे नहीं लगता। इसी जिन्दगी में अपना कहने के लिए

एक बेटे के सिवा दूसरा कोई नहीं ...." दुर्गाबाई का स्मरण होने पर क्षण-भर के लिए उसकी जीभ लड़खड़ा उठी। उसे यह भी याद आया कि उसके वंश में एक और नया जीव पैदा हो गया होगा और आज वह दस वर्ष का होगा—वह लड़का है या लड़की उसकी उसे कोई कल्पना नहीं थी – जिन्दगी की ये पहिली सब बातें उसने बिल्कुल भुला डाली थीं। इसीलिए एक क्षण के लिए रुककर वह बोला—"मेरा एक ही साथी है। वह है मेरा लड़का। अच्छा हुआ जो मैंने उसे अपनी इन सारी झंझटों से दूर ही रखा। मरने से पहले मेरी एक ही इच्छा है। फांसी पर चढ़ने से पहिले की रात मैं एकान्त में उस लड़के के साथ बिताना चाहता हूँ।

उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। उस रात जिस समय मोहन ने शंकर की कोठरी में कदम रखा उस समय वह बिल्कुल निडर मन से ही आया था। शंकर का मन भी तैयार हो चुका था। उन्हें एकान्त दिया गया था सही, पर उन पर निगरानी रहेगी इसकी उन दोनों को पूरी कल्पना थी।

अपने जीवन का पूर्व इतिहास शंकर ने इससे पहिले मोहन को कभी न बताया था। मोहन में समझने की अक्ल आने के बाद से शंकर का जो स्वरूप उसने देखा था वह इसी प्रकार का था।

उस कोठरी में कदम रखते ही मोहन के मन पर प्रभाव पड़े बिना न रहा। वह अपना दिल बड़ा मजबूत करके आया था। उस पर उसका पूरा कब्जा था। वह एकदम रोया तो नहीं, पर उसकी आँखों में गीलापन देखते ही शंकर बोला—"मैंने तुम्हें यहाँ क्यों बुलाया है, जानते हो? मैं फाँसी पर चढ़ूँगा—कल इस दुनिया से हमेशा के लिए कूच कर दूँगा। इसीलिए मुझे देखकर औरतों की तरह आँसू बहाने को मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है। मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है कि मैं यह यकीन कर लूँ कि मेरे बाद आँसू बहाने को कोई है। मैं तुमसे एक ही बात कहता

ठाकर ने एक क्षण के लिए अपना मन सँभाल लिया । पुरानी स्मृतियाँ उसकी नजरों के सामने मूर्त हो उठने के कारण उसका निडर कलेजा क्षण-भर के लिए हिल उठा था ।

वह बोला—"एक ही बात बताता हूँ । घबराना नहीं । यह एक दंतकथा है । अपने ही गाँव की कहानी है । तुम यदि यह कथा सुनोगे तो तुम्हारा सारा जीवन ही बदल जाएगा······" फिर एकबार उसने अपना मन सँभाला और आगे बोला—"इक्तीस वर्ष पहले की बात है । हमारे शरणगाँव में एक बड़ा सज्जन पुरुष रहता था । सदा भगवान के प्रति उसकी अन्ध श्रद्धा थी, वह ब्राह्मण था । सदा ईश्वर के भजन-पूजन में लगा रहता था । उसके पास पुश्तैनी जायदाद थी जिसके सहारे उसकी गृहस्थी बड़े मजे से चल रही थी । इस तरह वह बड़े सुख और संतोष मे अपना जीवन बिता रहा था । उसका सिद्धान्त था दूसरों पर उपकार करना और अपनी शक्ति के अनुसार वह यह करता भी था । यदि उसे कोई दुखी जीव दीख जाता तो वह अपने सुख की कोई परवाह न कर उस दुखी जीव को सुख देता—उसका दुख निवारण कर देता । अनेक वर्षों तक उसका यही रवैया रहा । उसकी सज्जनता और परोपकार वृत्ति के कारण उसकी सारी दौलत समाप्त हो गई । वह दरिद्री हो गया, परन्तु उस दरिद्रता मे किसी ने भी उस पर दया न दिखाई । जिन व्यक्तियों पर उसने उपकार किये थे वही व्यक्ति उसके विरुद्ध हो उठे .."मोहन ने देखा कि इस वक्त उसकी मुद्रा पर आत्यंतिक क्षोभ की भयानक छाया छा उठी है । वह आगे बोला—"यही होता है इस दुनिया में । अहसान-फरामोशों की नीचता के कारण ही यह दुनिया खराब हो गई है । इस सड़ी हुई दुनिया से वह घृणा करने लगा । दुनिया ने उसे ठुकरा दिया । कुछ दिनों तक उसने दुनिया की ये ठोकरें बरदाश्त की । वह चुप था, पर एक दिन उसके हृदय का स्वाभिमान जाग उठा । उसे लगा कि दुनिया ने ठुकराकर उस पर बड़ा उपकार किया है । ऐसा उसे क्यों लगा, क्या तुम जानते हो ? इसलिए कि आगे दुनिया को

उसका ठाकर खाना थीं।"

पुनः क्षण-भर के लिए वह चुप रहा। उसके अंतरतम की एक कोमल भावना जाग उठी थी। उस भावना को बलात् दाब कर वह बोला—"सुनो मोहन, उस की पत्नी बड़ी भली थी। ईश्वर के प्रति उसे भी महान श्रद्धा थी। वह भी सदा भगवान के भजन-पूजन में व्यस्त रहती थी। वह बड़ी पतिव्रता थी। पति को भगवान का भक्त होने से इस कार्य में बड़ा प्रोत्साहन मिला था। पति की तरह वह भी बड़ी परोपकारिणी थी। दुनिया जब उसके पति पर उलट पड़ी थी तब वह शेर की तरह चिढ़ उठा था। पर उसकी पत्नी को चिढ़ नहीं आई। पति निडर था। पाप से वह नहीं डरता था, पर वह बड़ी पापभीरु थी। इतनी कि अपनी छाया से भी डरती थी। उसके अपने लोग ही उस पर उलट पड़े थे। एक रात उसकी आँखें खुल पड़ीं। उसे प्रकाश दिखाई दिया— उसकी पत्नी को भी वह प्रकाश दिखाई दिया। उसने आँखें खोल कर बाहर देखा, पर वह आँखें बन्द कर अन्तर्मुख हो गई। उसके हृदय में खलबली मच गई, पर वह अलबत्ता बिलकुल शान्त रही..."

पुनः वह क्षण-भर के लिए चुप हो गया। इस समय उसके अन्तःकरण में हो रही खलबली को रोकना उसके लिए कठिन हो रहा था, ऐसा मोहन को दिखाई दिया। एक गटक भर वह बोला—"दुनिया के आगे जो गर्दन झुका देता है उसे दुनिया ठोकर मार देती है। परन्तु जो दुनिया को ठुकरा देता है उसके आगे दुनिया नाक घिसती है। यह ताप जब दृष्टि में आ गया तो उसी क्षण वह बदल गया। उसका कलेजा पत्थर हो गया। उसकी काया वज्र की हो गई। उस एक ही क्षण में उस महान कायर पुरुष का एक महापरमात्मा में रूपान्तर हो गया।"

अब बैजल ठाकर का अपने मन पर अधिकार न रहा। वह बोला—"तब से मैंने भक्ति छोड़ दी, धर्म ठुकरा दिया, पाप-पुण्य का विचार करना छोड़ दिया, घर छोड़ दिया और उस घरवाली को भी छोड़ दिया। इस कारण ही मैं सुखी हुआ, धनी हुआ। फिर भी अभी कभी

है। पर उस कमी की पूर्ति के लिए अब समय नहीं, क्योंकि म मात फ द्वार पर खड़ा हूँ। तुम्हें यदि जिंदा रहना है तो ऐसे ही बनो। मेरे समान, मुझसे भी अधिक कठोर, मुझसे भी अधिक भयंकर, मुझसे भी अधिक पुरुषार्थी। मेरे हृदय मे थोड़ी सी कोमलता रह गयी। इस कारण कभी-कभी मेरा हृदय पिघलने लगता था। हृदय का द्वार थोड़ा खुला हुआ रह गया जिससे धीरे से भीतर छिपकर बैठी हुई सज्जनता आहिस्ते से झाँककर देखने लगती। इसलिए अपने हृदय के द्वार को तुम पूरा बंद कर लो। बड़ा बुरा है यह हृदय। कहते हैं कि हृदय होने से मनुष्य जीवित रहता है, पर मेरा मत है कि यह हृदय ही मनुष्य को दगा देता है। हृदय के आवेग से रची गई ऊँची मीनारें लड़खड़ाकर गिर पड़ती हैं, इसीलिए कहता हूँ कि हृदय दगा देता है। हम लोगो के खून मे यह संस्कार भिद गया है कि एक शैतान हमारे भवितव्य के सूत्रो का संचालन करता है। उस संस्कार को तहस-नहस करके उखाड़कर फेंक दो। भगवान का कभी नाम भी मत लो। भगवान के डर से इन्सान पंगु बन जाता है। भगवान के बड़प्पन की कल्पना से इन्सान खुद अपने को छोटा मानने लगता है, अपना बड़प्पन खुद अपने हाथ से खो देता है। इसीलिए कहता हूँ कि भगवान के नाम को धता बताओ, अपने दिल से उसे पोंछ डालो। माया-ममता को हृदय से बाहर निकाल कर अलग कर दो। मेरी इच्छा है कि जहाँ भी मैं रहूँ वहाँ से मुझे यह देखने को मिले कि मेरा मोहन 'सवाई डाकर' हो गया है। बोलो! होगे ऐसे ?"

मोहन ने गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहा। उसकी जिह्वा पर आया हुआ शब्द पिता की दहकती हुई बातों से पिघल गया था।

"सुना!" शंकर गम्भीर स्वर मे बोला—"पिता की मृत्यु का नहीं पिता के खून का बदला लेना। विश्वासघात हुआ है। यह विश्वासघात किसने किया, क्यों किया, इसका पता लगाओ। उस विश्वासघाती को खोज निकालो, उससे बदला लो। अब बाप को भूल जाओ। साधारण

इन्सान नहीं है तुम्हारा बाप। वह मरेगा नहीं। गीता याद है तुम्हें? उसमें श्रीकृष्ण ने भी कहा है अर्जुन से कि शठ का शाठ्य मैं हूँ। वही हूँ मैं, मैं मरूँगा नहीं। चिरंजीव रहूँगा। वही तुम हो मेरे चिरंजीव। जहाँ तुम जाओगे तुम्हारे पीछे मैं हूँ ही। जाओ कामयाब हो।"

इस समय मोहन अपने मन के उद्वेग को रोक नहीं पाया। अभी तक रोक कर रखी हुई सिसकी कलेजा फोड़ कर बाहर निकल पड़ी और फूट-फूटकर रोते हुए उसने अपने बाप को कसमसाकर अपनी बाहों में कस लिया।

"पागल हो।" उसकी आँखें पोंछते हुए बड़े वात्सल्य से हँसते हुए शंकर ने कहा—"शेर के बच्चे की आँखों में इस तरह बकरी के आँसू शोभा नहीं देते···"

आँख पोंछकर मोहन ने शंकर की ओर देखा। क्षण-भर के लिए उत्पन्न हुए उद्वेग को दूर फेंककर वह अब कठोर बन गया था। शंकर की आँखों में चमकने वाला निडरता का तेज सौ गुना होकर अब उसकी आँखों में उमड़ पड़ा था।

उस की यह मुद्रा देखकर शंकर को आनन्द हुआ। उसे सीने से लगाता हुआ वह बोला— "अब और एक ही शब्द मेरी अंतिम आज्ञा! अगर मौका पड़ जाए तो चाहे जिस पर विश्वास कर लेना, पर किसी स्त्री पर कभी भी विश्वास न करना। फिर वह माँ हो, बहिन हो, पत्नी हो, लड़की हो या रखैल हो, प्राणों से भी प्यारी हो। जिसे "भगवान! भगवान!" कहते हैं वह स्त्रियों के आँसुओं से जागृत होता है। उसका मुँह भी मत देखना। वह भगवान नाम का शैतान स्त्रियों के आँसुओं में छिपा बैठा रहता है। कहीं उससे आँखें चार हुईं कि तुम्हारा हृदय कोमल हो उठेगा और एकदम उसकी निगाहों के जरिए वह भगवान तुम्हारी आँखों में घुस बैठेगा। तुम्हारे हृदय का पत्थर लेगा और तुम कमजोर बन जाओगे। इसीलिए कहता हूँ, भगवान एक बार अच्छा, पर स्त्री से हमेशा दूर ही रहना, जाओ अब···" ऐसा कहकर उसने बड़े विश्वास

से उसे अपने कमरे से बाहर कर दिया।

मोहन वहीं कोठरी के बाहर खड़ा था कि इसी समय किसी एक पंडित को साथ लेकर जेलर शंकर की कोठरी में गया। उस पंडित को और उस पंडित के हाथ में रखी गीता को देखते ही शंकर के सारे बदन में जैसे आग लग गयी। उसने एक घूंसा मारकर पंडित को कोठरी से बाहर निकाल दिया और चिल्लाया, "किसके लिये लाये हो यह गीता? क्या पाप का प्रायश्चित करवाने के लिए? पश्चातापी जीव के लिए? क्या तुम्हारा ख्याल है कि मुझे पश्चाताप हुआ है? मैं मर्द हूँ। मर्द की तरह फांसी पर झूलूँगा। मर्द की तरह दुनिया छोड़कर जाऊँगा। मुझे न गीता की जरूरत है और न गीताकार की। चलो, ले चलो मुझे।"

पुलिस के सिपाही आए। उन्होंने उसे हथकड़ियाँ पहनाईं। उसके हाथ पीछे बांध दिये। संगीनों के पहरे में वह कोठरी से बाहर निकला। बाट जोह रहे मोहन की ओर उसकी नजर गई। उसे लगा मोहन की आंख गीली हो रही है। क्रोध से आँखें तरेरकर उसने मोहन की ओर देखा।

मोहन सावधान हो गया, होश में आया। संगीनों के पहरे में लड़ाई पर जा रहे वीर की तरह दनादन कदम बढ़ाता हुआ फाँसी पर झूलने के लिए शंकर निकल पड़ा था। मोहन जिस समय जेल के बाहर निकला उसी समय शंकर की आत्मा उसके नश्वर देह को छोड़कर किसी अज्ञात स्थान को चल दी थी।

नित्य की भाँति गीतापाठ हो रहा था। परन्तु वह सार्वजनिक गीता पाठ नहीं था। दुर्गाबाई सिर्फ कुमार और लता, दोनों को ही स्वतन्त्र रीति से गीता का प्रत्येक श्लोक समझाया करती और भिन्न-भिन्न भाष्यकारों तथा टीकाकारों द्वारा उन श्लोकों पर प्रदर्शित किये गये मतों का विवेचन करके बताती। इस प्रकार का विशेष गीतापाठ रहता था वह। गीता का यह विवेचन हमेशा 'यथार्थ दीपिका' के जरिये ही हुआ करता था। अन्तिम अध्याय के अन्तिम श्लोक का विवेचन हो रहा था।

दुर्गाबाई ने कहा—"अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि आपकी कृपा से मेरा सारा मोह और अज्ञान दूर हो गया और अब आपकी आज्ञानुसार मैं कौरवों से लड़ूँगा और उन्हें मौत के घाट उतारूँगा।"

यह सुनकर कुमार बोल उठा—"मतलब ? तो क्या अर्जुन अब अपने सगे-सम्बन्धियों, गुरुजनों और भाईबन्धों के प्राण लेगा ?"

"हाँ !"—दुर्गाबाई गंभीरता से हँसती हुई बोली—"हाँ, यही है भगवान की शिक्षा। गुरुजनों को वह क्यों मारेगा ? क्योंकि 'परित्राणाय साधूनाम्' 'विनाशाय च दुष्कृताम्' 'धर्म संस्थापनार्थाय'-इस काम के लिए हमें अपने गुरुजनों को नहीं देखना चाहिए, अपने भाईयों को नही देखना चाहिए, अपने सगे-सम्बन्धियों को नही देखना चाहिए। सज्जनों की रक्षा के लिए दुर्जनो का नाश अवश्य होता है और दुर्जनों का नाश हुए बिना धर्म की संस्थापना नहीं हो सकती। क्या भगवान पहिले ही यह कह चुके हैं कि "मयैव ते निहतः सर्व पूर्व" "निमित मात्रं भव सव्य-

साचिन"—अपने ही कर्मों से दुर्जन स्वयं अपना ही नाश कर लेते हैं, यही भवितव्यता है। उस भवितव्यता के अनुसार, ईश्वर की इच्छा के अनुसार उनका नाश तत्वतः हो ही चुका होता है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से उनका विनाश करने के लिए किसी को निमित-मात्र होना पडता है। वह निमित्त-मात्र भले-बुरे के अधिकारी तुम बनो। मैंने उनका विनाश पहिले ही कर दिया है। ऐसा जब भगवान ने अर्जुन से कहा तभी वह गुरजनों पर भी शस्त्र उठाने के लिए तैयार हुआ। 'संभवामि युगे-युगे'—युगे-युगे क्यो ? बल्कि हर घडी, हर क्षण ईश्वर अवतार ले रहा है। क्षण-क्षण मे जीव जन्म पा रहा है। ये ही ईश्वर के अवतार हैं। प्रत्येक जीव ईश्वर का अंश है और उस प्रत्येक जीव का यह कार्य है। यही भगवान ने अर्जुन से कहा। इसीलिए अर्जुन बोला—"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध। मेरे भीतर का मोह चला गया, मेरे भीतर का ईश्वर जाग उठा।" फिर इस भावना से मैं स्वयं ईश्वर हूँ वह अपने सगे-सबन्धियो का नाश करने के लिये प्रवृत्त हो गया, क्योंकि वे दुर्जन थे। सज्जनो को कष्ट देनेवाले थे, दूसरो का सर्वस्व छीन लेनेवाले थे, वे दूसरों की अनादि स्वतत्रता का अपहरण कर उन्हे जबरदस्ती दासता की शृंखला मे बाँधने वाले थे। यद्यपि उसके सामने खडे सब लोग उसके अपने थे, पर दुर्जनों का नाश करके उसे धर्म की सस्थापना करनी थी, इसीलिए वह उनका नाश करने के लिए तैयार हो गया ··"

"क्या वह अपने ही भाईबन्दो का नाश करके धर्म की सस्थापना करना चाहता था ?"—लता ने पूछा।

यह देखकर कि इतना विवरण करने के बाद भी लता ने यह प्रश्न पूछा, दुर्गाबाई को आश्चर्य हुआ। वह बोली—"हाँ, अपने भाईबन्दों का नाश करके ही। क्यों ?"

"क्या कुंती ज्ञानी थी ?"—लता ने प्रश्न किया।

"हाँ !" कहते समय दुर्गाबाई क्षण-भर के लिए सोच मे पड़ गई।

"क्या वह भी दुर्जन भाईबन्दों का नाश चाहती थी ?"

दुर्गाबाई ने गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहा तब लता आगे बोली—"... वह कर्ण से यह कहने क्यों गयी कि वह युद्ध न करे ? इतने सालों तक गुप्त रखा अपना रहस्य उसने कर्ण से क्यों कहा और उसे युद्ध करने से क्यों रोका ?"

दुर्गाबाई क्षण-भर के लिए सोच में पड़ गई। उस प्रश्न का उत्तर देते समय उसे आगे-पीछे की बहुत-सी बातें बतानी पड़तीं। गीता के तत्वज्ञान की कसौटी पर कसकर देखें तो कुन्ती ने जो किया वह अविचार गीता के तत्वज्ञान को स्वीकार न था। इसीलिए उसने कहा—"यह मत पूछो लता···"

"क्यों ?"—लता ने ईर्ष्या से पूछा।

"वह उसकी दुर्बलता थी।"—दुर्गाबाई बोली—"वह माँ की कमजोरी थी। अत्यन्त क्षमाशील माँ के हृदय की वह दुर्बलता थी। जननिंदा के भय से उसने अनेक वर्षों तक कर्ण के जन्म का रहस्य प्रकट नहीं किया, पर जब उसने देखा कि विनाश का समय निकट आ गया है, उस समय उसके हृदय के भीतर की माँ जाग उठी। अपने पुत्रों का नाश न हो, ऐसा उसे लगा। एक पुत्र दूसरे पाँच पुत्रों की हत्या के लिए कारणीभूत न हो ऐसा उसे लगा। यह उसका मोह था। परन्तु माँ के हृदय की थाह अभी तक किसी को नहीं लगी। वह भावना हमारे तत्वज्ञान से परे है। माँ-माता जगन्माता। क्षण-भर के लिए वह स्तब्ध रही। ... ंदकर थोड़ी देर वह विचार मे खो गई। उस प्रश्न का उत्तर हृदय मे स्फुरित हो उठा था. परन्तु उस उत्तर का विवेचन सुनने ; मन की जो तैयारी चाहिए वह उसके उन नन्हे श्रोताओं के पास इसलिए वह बोली—"नही लता, तुम इस विषय पर विचार । यह प्रश्न मत पूछो। अभी तुम छोटी हो। इस उम्र में तुम नही समझ सकोगी।"

समय घन्टी बजी। सार्वजनिक प्रवचन का समय हो जाने के उन दोनों बच्चों को वही छोड़कर दुर्गाबाई अपने नित्य के कार्य

के लिये चल दी ।

प्रवचन करते समय एक ही प्रश्न उसके मस्तिष्क में लगातार चक्कर काट रहा था । मन मे उठ रहे उन विचारो के अनुरोध से ही वह उस दिन का प्रवचन कर रही थी । उस दिन उसका मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा था । इसके बावजूद नित्य-क्रम मे कोई गलती न हो, इसलिए वह हर दिन की निष्ठा से ही अपना काम पूरा किये जा रही थी ।

शाम हुई । सारे कार्य-क्रम समाप्त हुए । उस दिन उपवास होने के कारण उसे भोजन करने की जल्दी न थी । कुमार भी उसके साथ सब व्रतों का पालन करता था । इसलिए उसे भी भोजन की जल्दी न थी । कितने ही देर तक वह मिशन-हाऊस मे लता के साथ खेलता रहा था । पादरी बाबा भी उन बच्चो के खेल में शामिल थे ।

उस दिन वे दोनो बच्चे बेहद खुश थे । देवी के पास से मिठाई के पैकेट जानबूझकर कुमार के लिए अलग से आए थे, इसलिए कुमार के आनन्द का पारावार न था ।

उस पैकेट को लिए कुमार दौड़ता हुआ ही घर गया । सध्या-पूजा के बाद दुर्गाबाई नित्य की भाँति भगवान के सामने खडी होकर प्रार्थना कर रही थी।

उसकी प्रार्थना के समाप्त होने तक हाथ मे मिठाई का पैकेट लिए कुमार प्रतीक्षा करता खडा था । भगवान को प्रणाम करके दुर्गाबाई जब खड़ी हुई तब कुमार बोला—"माँ, देखो यह क्या है ?"

"क्या है ?"—उसने पूछा ।

"मिठाई भेजी है देवी ने, लता की देवी ने, मेरे लिए, खास मेरे लिए अलग से एक पैकेट भेजा है । भीतर एक पत्र भी है जो उसने मुझे लिखा है ।"

"अच्छा !" दुर्गाबाई बोली—"अच्छा, तुम खा लो वह मिठाई । तुम्हारे खाने से मुझ तक पहुँच जायगी ।"

"ऊँ हूँ !! ऐसा नही !" कुमार दुलारसे उसके गले में बाँह लपेटता

कुमार बोला—"पहिले आपके खाये बिना मैं नहीं खाऊँगा यह मिठाई। मेरी देवी जो हो तुम। क्या तुम्हें भोग नहीं लगाना चाहिए पहिले ?"

"हाँ, लगाना तो चाहिए !" दुर्गाबाई ने मुस्कराते हुए कहा—"फिर यहीं रख दो थोड़ा सा मेरे भोग के लिए। मुझे भोग लगाकर तुम खालो कि हो गया। अभी मेरा पाठ बाकी है। उसे पूरा किये बिना मैं कुछ नहीं खा सकती।"

कुमार ने पैकेट से एक कागज का टुकड़ा फाड़ा। उस पर बर्फी का एक टुकड़ा रखकर चल दिया। नित्य का पाठ पूरा होने तक वह बर्फी का टुकड़ा उस कागज पर उसी तरह रखा रहा। पाठ पूरा करके दुर्गाबाई उठी और जा ही रही थी कि उसे मिठाई की याद आई। मन-ही-मन उसने भगवान को उस मिठाई का भोग लगाया और कागज पर रखा बर्फी का टुकड़ा उठाकर अपने हाथ में लिया।

इसी समय उसकी निगाह उस कागज के टुकड़े पर पड़ी। वह अखबार का एक टुकड़ा था। उस टुकड़े पर उसे शंकर का फोटो दिखाई दिया। बर्फी का टुकड़ा एक ओर रखकर उसने वह कागज हाथ में लेकर देखा—

शंकर को फाँसी देने का समाचार था।

वह कागज उसके हाथ में उसी तरह रहा। वह पत्थर की तरह तटस्थ हो गयी। दुखावेग दिखाने का वह क्षण न था। उसका मन पत्थर की तरह हो गया था। जीवन के आलेख से पोंछ डाला गया वह प्रसंग फेर से मुखर हो उठा था।

पत्नी के नाते उसका एक कर्तव्य था। प्यार का मोह, रिश्ते का बन्धन, सहवास की आत्मीयता, यह सब कुछ ही न रहा था। पूर्व-जन्म की याद की तरह अस्पष्ट धुँधली-सी एक स्वप्नमय स्मृति थी वह। उस स्मृति के जाग उठते ही क्षण-भर के लिए उसके हृदय को धक्का लगे बिना न रहा।

पर वह धक्का क्षणिक था। उस धक्के से उसका हृदय हिला नहीं।

उसे इतना ही लगा कि वह एक स्थिति विशेष थी और अब विलुप्त हो गई थी। शरद ऋतु में सूरज पर सहज चल देने वाले बादल की तरह उसके हृदयाकाश में एक क्षण के लिए ही उसकी आत्मा चौंधिया गयी।

अब उसकी स्थिति स्थितप्रज्ञ की थी। वह सुख-दुख के धक्के के परे पहुंच गयी थी। इसीलिए ऊपर से अत्यन्त महत्वपूर्ण लगने वाले इस प्रसंग के कारण उसी मन स्थिति में कोई फर्क नहीं हुआ।

चुपचाप वह बाहर गयी। बाहर के मंडप में रखी श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने उसने अपना सौभाग्यपूर्ण मस्तक आखिरी बार नत किया। हाथ की चूडियाँ उसने फोड डाली। गले का मंगल-सूत्र तोड डाला। मस्तक का कुंकुम पोछा और उतनी ही गंभीर और शांत वृत्ति से स्नान करके वह घर में गयी।

शंकर के फांसी पाने का समाचार शरणगांव में आ गया था, पर किसी ने भी जाकर वह समाचार दुर्गाबाई के कानों में नहीं डाला था। प्रत्येक उसमें यह समाचार कहने के लिए डरता था। कहीं-न-कहीं से, कभी-न-कभी यह समाचार उसे मालूम हो ही जायगा। इस अपेक्षा से जो लोग हमेशा उससे मिलते रहते थे उन्होंने उस बात का उससे कभी कोई जिक्र ही न किया था।

वैसे गाँव के मोहल्ले इस विषय में बातें करते रहते थे। शंकर की भी खूब निन्दा करते थे, परन्तु गाँव की ये बातें उसके कानों में कभी न पहुँचा करतीं। गाँव में वह कभी जाती ही नहीं थी। किसी से कोई संबंध ही नहीं रखती थी। उसी का यह परिणाम था।

दुर्गाबाई के बाह्य स्वरूप में हुआ फर्क दूसरे दिन सबके ... आ गया था, परन्तु किसी ने उसका कोई जिक्र न किया।

इस विषय में कुछ ...

कहने की ...

कुमार को इसका कुछ पता ही न था । इस समय तक उसे अपने बाप के अस्तित्व की भी कल्पना न थी । शाला में लड़के बेतरह बातें करने लगे थे । उसके कानों में यह खबर पहुँची । उसने यह समाचार पादरी से कहा ।

यह देखकर कि इस समाचार के बारे में कुमार पूर्ण अन्धकार में है, पादरी उसे एक ओर ले गया और उसे सारा हाल कह सुनाया । कुमार को यह समाचार बताते समय पादरी को बड़ा कष्ट हो रहा था । जो बात कुमार की माँ से भी कहते नहीं बनी, उसे कुमार से कहने का अवसर उसे आ पड़ा था । उसने बड़ी सौम्य और वात्सल्यपूर्ण वाणी में कुमार को अब सारी जानकारी दे दी । जब पादरी को पता चला कि दुर्गाबाई ने इस विषय में उससे कुछ भी नहीं कहा, तब उसने इस सम्बन्ध में उसे अपनी माँ से कुछ कहने के लिए रोक दिया । कुमार बड़ा समझदार लड़का था । उसने पादरी की बात मान ली और वचन दिया कि वह इस विषय में अपनी माँ से कभी कुछ न कहेगा । सच पूछा जाय तो उसके मन पर इसका परिणाम होने के लिए कोई कारण ही नहीं था, क्योंकि उसे यह भी पता नहीं था कि उसका बाप है । फिर भी क्षण-भर के लिए दिल पर असर हुए बिना न रहा ।

उधर बम्बई में मोहन के मन पर अलबत्ता अपने पिता की मृत्यु का, जिसे वह पिता का खून हुआ मानता था, विलक्षण परिणाम हुआ था । प्रतिशोध की भावना से वह लगातार जल रहा था । बदला लेने का मौका नजदीक होते हुए भी उसने कुछ समय व्यतीत हो जाने दिया ।

वह निश्चय रूप से यह अन्दाज नहीं कर पा रहा था कि सच्चा विश्वासघाती कौन है । प्रत्यक्ष प्रमाण की दृष्टि से एक रामलाल ही उसे सामने दिख रहा था, परन्तु शंकर के फाँसी हो जाने के बाद रामलाल ऐसा फरार हुआ कि उसका कहीं पता ही नहीं लग रहा था ।

रामलाल भीकू का पिट्ठू था और भीकू के सारे सूत्र बैरावलाल द्वारा संचलित होते थे । रामलाल के लापता हो जाने के कारण यह

शृंखला एक तरह से टूट गई थी ।

अब मोहन को बदला लेना था उन सब गवाहों से, जिन्होंने इजलास में उसके पिता के खिलाफ गवाहियाँ दी थी और उन जजों और जूरी के सभासदों, से जिन्होंने उसके पिता को फाँसी की सजा दी थी।

सच पूछा जाए तो ये सब लोग पूर्णरूप से निर्दोष थे। उन्होंने शंकर को फाँसी पर चढ़ाने के लिए गवाहियाँ नहीं दी थीं और न जजों के फैसला लिखने का ही यह उद्देश्य था, परन्तु किसी-न-किसी से बदला लिए बिना मोहन को सतोष नहीं हो रहा था।

पिता का ही काम उसने आगे जारी रखा, परन्तु शंकर की तरह वह अविचारी नहीं था। वह जितना विलक्षण साहसी था, उतना ही धूर्त था। उस धूर्तता के जोर पर उसने शकर के मुकद्दमे से संबंध रखने वाले हर व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया। उन लोगों की मृत्यु के जो कारण ऊपरी तौर से दिखाई दिये थे वे बिल्कुल स्वाभाविक थे। ऐसा नहीं लगता था कि किसी ने जान-बूझकर उनकी हत्या की है। किसी के घर डाका डाला और वहाँ जो मारपीट हुई उसी में वह व्यक्ति अपनी जान से हाथ धो बैठा था। किसी की मृत्यु मोटर की दुर्घटना में हो गयी थी। किसी के गले में रस्सी लपेटकर ऐसा दिखाया गया था जैसे उसने आत्म-हत्या कर ली थी। इस तरह अपने मत के अनुसार उसने उन सभी व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया, जिनका सम्बन्ध उसके पिता के मुकद्दमे से था। बच गया था सिर्फ एक रामलाल। पर रामलाल के फरार हो जाने के कारण मोहन भी विवश था। फिर भी उसके मन को सतोष हुआ और फिर सौगुने आवेश के साथ केशवलाल का डटकर मुकाबला करने के लिए वह सिद्ध हो गया।

केदावलाल और मोहन के झगड़े जारी थे, पर वे दोनों कभी एक दूसरे के सामने नहीं आए।

उनकी यह भिड़न्त परदे की ओट में चल रही थी। दोनों एक दूसरे को हरा देना चाहते थे। दाव पर दाव खेले जा रहे थे, परन्तु वे दाव कौन किस पर खेल रहा है, कैसे खेल रहा है और कहा से खेल रहा है? इसका पता बाहर की दुनिया को न लगना था।

केदावलाल जानता था कि उसके साथ जो चाल खेली जा रही है वह मोहन ही खेल रहा है। उसे मालूम था कि शंकर के फांसी पर चढ़ने के बाद से मोहन की नजर उस पर है और उस पर वह घात लगाये बैठा है। पर उसे मोहन कहीं मिल नहीं रहा था। दोनों ही बाहरी दुनिया में बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तियों की तरह रह रहे थे।

वैसे देखा जाय तो केदावलाल की तुलना में मोहन एक बच्चा था। उसकी उम्र यही बीस वर्ष की थी। उसके बावजूद उसने केदावलाल की नाक में दम कर रखा था। यह देखकर केदावलाल के तलवे में आग लग रही थी। जिस तरह दो हवाई जहाज बादलों की ओट में लड़ रहे हों उसी तरह दोनों में यह भिड़न्त हो रही थी। बादल की ओट से बंदूक की धमक आये, क्षण भर के लिए दिखे और एकदम विलुप्त हो जाएं, पर उसका परिणाम केवल दुनिया को भोगना पड़े, उसी तरह यह चल रहा था। साधारण शान्त मनुष्य अकारण ही उन दो शैतानों की चालों के शिकार हो रहे थे।

जुए के अड्डे में मोहन को देखने के बाद से सुन्दरी का दिल बेचैन हो उठा था। शंकर के फाँसी जाने के बाद मोहन उन मुकद्दमों से साफ छूट गया था। यह पता चलते ही कि उन मुकद्दमों से मोहन का कहीं जिक्र भी नहीं आया, सुन्दरी को बड़ी खुशी हुई।

वह मोहन को खोज करने लगी। अचानक कभी-कभी किसी सिनेमा-गृह में वह नजर पड जाता था, परन्तु उसने उसकी ओर कभी झाँक-कर न देखा और न अपना परिचय ही दिया।

सुन्दरी ने बेशक अनेक बार यह दिखाने की कोशिश की कि वह उसे पहचानती है, पर हर बार मोहन ने उसे तिरस्कार कर फटकार दिया।

मोहन स्त्री-जाति से हमेशा दूर ही रहा करता था, सिर्फ इसलिए नहीं कि मृत्यु के समय पिता ने उसे इस विषय का उपदेश दिया था, बल्कि उसे स्वयं अपने मन से भी यही लगता था कि स्त्रियो से उसे सदा दूर रहना चाहिए। जीवन मे उसने एक ही ध्येय अपने सामने रखा था और वह था येन-केन प्रकारेण केशवलाल को सदा के लिए खत्म कर देना और खूब दौलत बटोरना। स्त्रियों के पीछे पड जाने के कारण केशव लाल को कभी-कभी कैसा गोता खाना पडता था यह उसने देखा था और इसीलिए स्त्रियों के बारे में वह अधिक सतर्क और सावधान हो गया था।

वह अकेला ही रहता था। उसने गृहस्थी नही सजाई। सार्वजनिक दृष्टि से उसकी एक ही विशाल कोठी थी, पर बम्बई के प्राय. हर भाग में उसके गुप्त निवास स्थान थे। जरूरत के मुताबिक वह अपने इन गुप्त स्थानों में रहा करता था और वहाँ से अपने काले कारनामो के सूत्र संचालित करता था, पर वह मिलता था केवल अपनी कोठी मे ही।

कपास के बाजार मे वह एक बड़ा खिलाड़ी था। कपास के सट्टे के खेल में उसका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं था। इस खेल मे उसने लाखों रुपये कमाये और लाखों खोये भी थे। केशवलाल से खुल्लमखुल्ला उसका सामना इसी क्षेत्र में था।

लेकिन इसके सिवा जो अन्य लड़ाई के क्षेत्र थे उसमे दोनो की

लड़ाईयाँ परदे की ओट में हुआ करती थीं। इन दोनों में वह स्वयं काम करता था। केशवलाल की यह बात न थी। इन दोनों के सारे काम केशवलाल की तरफ से भीकू किया करता था। इसमें केशवलाल का उद्देश्य यह था कि किसी मामले में यदि पुलिस ने अपराधी को पकड़ा तो हथकड़ियाँ भीकू के हाथों में पड़े और वह स्वयं बिल्कुल छूट जाय। इसी लिए इन झंझटों में वह अपने आपको कभी नहीं उलझने देता था।

भीकू भी केशवलाल की यह चाल जानता था और इसीलिए परिस्थिति से लाभ उठाकर वह केशवलाल से समय-समय पर लम्बी रकमें ऐंठा करता था। केशवलाल भी ऐसे मौकों पर अपनी थैली खोल देता था। इसलिए भीकू को भी खतरा उठाने से इंकार न था।

मोहन को किसी-न-किसी तरह शिकंजे में लाने की कोशिश केशवलाल भीकू के जरिये कर रहा था, पर मोहन इतना चालाक था कि वह कभी उसके जाल में न फँसा।

एक दिन मोहन बालाराम स्ट्रीट से जा रहा था कि उसने देखा कि कुछ गुंडे एक स्त्री से छेड़खानी कर रहे हैं। क्षण-भर के लिए उसने सोचा कि वह उसे बचाने जाय या नहीं? परंतु जीव-दया ने उसके क़दमों को बलात् आगे बढ़ा दिया। वह इन गुंडों पर टूट पड़ा और स्त्री को उसने उनके चंगुल से मुक्त कर दिया।

उपकार-भार से बोझिल हुई उस तरुणी ने मोहन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और अत्यन्त विनम्रता से उससे प्रार्थना की कि वह उसके घर को अपने पुनीत चरणों से पवित्र करने की कृपा करे। एक क्षण के लिए मोहन अपना निश्चय भूल गया था। तारुण्य के स्वाभाविक प्रभाव से उसका मन एक क्षण के लिए ही डगमगा उठा। उसने उस तरुणी को वचन दे दिया कि किसी दिन वह उसके घर आकर उससे अवश्य मिलेगा।

भायखला रोड पर स्थित एक साधारण बस्ती की चाल में वह तरुणी रहती थी। उसके द्वारा दिये गये पते पर एक दिन मोहन उसके

घर गया। बड़े आदर से उस तरुणी ने उसका आतिथ्य किया।

मोहन को दिखाई दिया कि वह तरुणी वेश्या थी। गरीबी के कारण वह अपनी देह बेचने को मजबूर हो गई थी।

मोहन को जब यह मालूम हुआ तो प्रथम भेंट में ही उस तरुणी से उसे बड़ी घृणा हुई। उसे लगा कि पुन वह उसके घर में कभी कदम भी न रखे, परन्तु उसी समय उस तरुणी के प्रति उसके हृदय मे अनुकम्पा भी जाग उठी।

उसे लगा उस बेचारी का क्या कसूर? वेश्या के कुल में उसका जन्म नहीं हुआ था। उत्तर प्रदेश का कोई आदमी उसे उसके गाँव से भगाकर बम्बई ले आया था और यहाँ उसने उसे किसी के हाथ बेच दिया था। जब उसे यह कल्पना हुई कि उस पर कौन सा सकट आएगा तो वह उस वेश्यालय से भाग खड़ी हुई थी।

पर भागकर भी जाती कहाँ? उसे किसी के सहारे की जरूरत थी। वह एक स्त्री थी—सुन्दरी थी और हाल ही मे उसने तरुणाई की सीमा पर कदम रखा था। ऐसी स्थिति में अपने पैरो पर खड़े होकर अकेले जीवन बिताना उसे बड़ा कठिन लगा। इसलिए एक गरीब वृद्धा के आश्रय में वह रहने लगी। बीड़ियाँ बनाकर कुछ दिन उसने अपनी उपजीविका चलाई। इसी समय उसकी आश्रयदात्री वृद्धा बीमार पड गयी। उसके उपकारो की याद करके बीमारी मे वृद्धा की सेवा- शुश्रूषा और दवा-दारू करना उसके लिए आवश्यक था, पर वह बिना पैसो के दवा कहाँ से लाती? मुफ्त कौन दवा देता? जिस सेठ के यहाँ वह बीड़ियाँ बनाती थी वह बड़ा भला आदमी था, परन्तु उस तरुणी के दुर्भाग्य से वह तरुण था, अविवाहित था और काफी मालदार भी था। उसने वृद्धा की सेवा शुश्रूषा और दवादारू के लिए दिल खोलकर मदद दी। वृद्धा तो अच्छी हो गयी, परन्तु उस तरुणी पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा।

सेठ के उपकारों के भार के तले वह तरुणी और वृद्धा दोनो बिल्कुल दब चुकी थी। जब बुढ़िया ने ही प्रस्ताव किया तो वह तरुणी लाचार हो

गई। बुढ़िया न ही उस समय उसे यह समझाया था कि उस परिस्थिति में जिसमें वह रह रही थी, किसी युवक से विवाह करके गृहस्थी बसाना उसके लिए सम्भव नहीं था। इसलिए यह निश्चय करके, कि जिस एक मनुष्य के साथ रहने का मौका मुझे इस वक्त मिल रहा है उसी के साथ मैं आजन्म निष्ठावान रहूँगी, वह तरुणी उस सेठ के आश्रय में चली गई।

उस सेठ के सहवास में उसके कुछ दिन बड़े आनन्द में बीते। इसी समय कुछ गुंडों की उस पर नजर पड़ गई। बार-बार रुपयों का लालच दिखाकर उसे फुसलाने का उन्होंने प्रयत्न किया, परन्तु यह देखकर कि वह लालच में नहीं आ रही है उन्होंने उस दिन उसे सड़क पर अकेली पा जबरदस्ती भगाकर ले जाने का प्रयत्न किया था, उसी समय मोहन ने उन गुंडों के चंगुल से उसे छुड़ाया था।

वह बोली—"मुझ पर यह मौका कभी न आता। यदि सेठ का सहारा मुझे रहा होता तो वे गुंडे मेरे बदन को हाथ लगाने का साहस ही न करते। पर मेरे दुर्भाग्य से सेठ का विवाह हो गया और तब से उसने मुझसे सम्बन्ध रखना छोड़ दिया। मेरी उपजीविका का अलबत्ता उसने काफी प्रबन्ध कर दिया है। मेरा मासिक वेतन मुझे पहिले की तरह आज भी ठीक समय पर मिल जाता है। उसके कारण ही मैं इस पाप की खाई में पड़ी हूँ, यह वह महसूस करता है और इसीलिए मुझे आज तक वेतन दे रहा है। उसे इसका दुख होता है कि मेरे अधःपतन का जिम्मेदार वही है, परन्तु अब उससे वह वेतन लेना मेरी जान पर आ रहा है। मैं क्यों उससे वेतन लूँ? क्या अधिकार है मेरा उस पर? मेरा मन मुझे कचोटता है। परन्तु इसका कोई इलाज नहीं, इसीलिए मैं उसके उपकारों पर जी रही हूँ। इस दुख से क्या आप मुझे मुक्त करेंगे? बिल्कुल बेसहारा हूँ। ऐसी स्थिति में गुंडे मुझ पर आक्रमण करेंगे—शायद पुलिस से जाकर मेरी शिकायत भी कर दें—मुझे पुलिस भी परेशान करने लगेगी—मैं किसी का भी सहारा नहीं दिखा सकूँगी और अंत में एक दिन मुझे फरास रोड पर जाकर रहने का मौका आ जाएगा—

उसका यह हाल सुनकर मोहन का हृदय पसीज उठा। उसे उस पर दया हो आई। क्षण-भर के लिए उसकी सारी सतर्कता जाती रही और वह असावधान हो गया। उसका मन बोला—मैं भी अकेला हूँ। हजार झंझटों में मेरी जिन्दगी उलझी रहती है। मुझे भी तो थोड़ा आराम करने के लिए एक आश्रय चाहिए जहां चौबीस घण्टों में एक-दो घण्टे मैं बेफिक्री से रह सकूं।

उसने तरुणी को कोई पक्का उत्तर नहीं दिया। उसने जेब में हाथ डाला। मनीबैग में सौ रुपये का नोट निकाला और वह उसके सामने फेंककर जाने लगा।

इससे पहिले कि वह बाहर कदम रखे तरुणी ने जाकर उसके चरण पकड़ लिये और अपने आँसुओं से उसके पैरों को नहला दिया।

उससे अपने को छुड़ाकर मोहन चल दिया सही, लेकिन उसके पथ-रीन हृदय को उस तरुणी ने द्रवीभूत कर दिया था। कभी-कभी उसके घर जाकर वह उससे मिल आता। वहाँ घड़ी-भर बैठना, उससे बातें करता और उसे कुछ रुपये भी दे आता, पर उसने उसे कभी स्पर्श नहीं किया और न उस तरुणी ने भी कभी उसके गले पड़ने की कोशिश की।

उस मुग्ध सहवास के बन्धन में वह दिन-प्रति-दिन उलझा जा रहा था। उसकी सूद की वृत्ति भी उलट पड़ी थी। पिता का उपदेश उसने भुला दिया था। यद्यपि अभी तक उसने उसे स्पर्श नहीं किया था फिर भी स्वयं उसे ही लगने लगा कि इस दया का स्वरूप कहीं प्रेम में तो परिणित नहीं हो रहा है?

अभी तक वह उससे दूर था, सिर्फ उसके पूर्व-इतिहास के कारण। पतिता से प्रेम करने में उसे एक प्रकार का भेद होता था परन्तु दिन-प्रति-दिन उस पतिता के प्रति उसकी घृणा विलुप्त होने लगी।

एक दिन वह उसके घर गया। अपने साथ वह एक बहुमूल्य हार ले गया था। उसने वह हार उस तरुणी के गले में पहना दिया और बेहोश-सा होकर वह उसे अपनी भुजाओं में कसने जा ही रहा था कि

इसी समय किसी की आहट उसके कानों में पड़ी। उसे आभास हुआ कि सामने के परदे के पीछे कोई व्यक्ति खड़ा है।

एक झटके से उसने उस तरुणी को दूर हटा दिया और जेब से पिस्तौल निकालकर उस परदे की ओर निशाना साधकर उसने गोलियाँ दागीं। एक मनुष्य की दयनीय चीख उसके कानों में पड़ी और साथ ही उसने देखा कि एक दूसरा मनुष्य सिर पर पैर रखकर भागा जा रहा है।

उसने भागने वाले का चेहरा ठीक से पहचान लिया। वह भीकू था।

परदा हटाकर उसने भीतर देखा। वहाँ रामलाल की खून में लथपथ लाश पड़ी थी। उसे बड़ी खुशी हुई। अपने हाथों उसे उसके पाप का प्रायश्चित देने का सौभाग्य उसे प्राप्त हो गया।

पिस्तौल को जेब के हवाले कर मोहन उस तरुणी ओर मुड़ पड़ा और बोला, "अभी मैं तुम्हें भी गोली मार देता। पर मैं तुम्हें जीवन-दान दे रहा हूँ केवल एक शर्त पर। सच-सच बताओ किसने नियत किया था तुम्हे इस काम पर ?"

वह थर-थर काँप रही थी। उसकी घिग्घी बँध गई थी। मोहन ने पुनः जेब से पिस्तौल निकाली और वह उस पर तानकर फिर पूछा—"बताओ किसने नियत किया था तुम्हें इस काम पर ?"

"केशवलाल ने।" वह चट से बोल गयी लेकिन बाद में पछताई मोहन ने उसके गले के हार को हाथ लगाया। क्षण-भर के लिए उसे लगा कि वह हार उसके गले से निकाल ले, पर पुनः उसने अपना हाथ पीछे हटा लिया। ऐसी क्षुद्र भावना अपने मन में आयी इसके लिए स्वयं उसे ही अपने आप पर शर्म आई और दुख हुआ। वह बोला—"इस समय मैं तेरा खून कर देता, परन्तु मेरा काम तूने कर दिया। तुझे मारकर मुझे क्या मिलेगा ? तुझ जैसी एक चिऊँटी को कुचल दूँ तो केशवलाल का इसमें नुकसान न होगा। अफसोस है कि भीकू मेरे हाथ से छूट गया, पर अभी भी…"

वह बोलते-बोलते एकदम रुक गया। उसे लगा कि वह वह बहा जा

रहा है। उसने जेब से मनीबेग निकाला। उसमें से दो-चार नोट निकाल कर उन्हें उसके मुंह पर मारता हुआ वह बोला—"मेरा सम्बन्ध अब तुमसे टूट गया। यदि तुमें सचमुच पश्चात्ताप हो रहा हो तो यह राह छोड़ दे। अपने पुरुषार्थ पर जी। पाप करते हो, खून करते हो तो अपने स्वार्थ के लिए, अपने आपके लिए कर। परन्तु दूसरों के हाथ का पिस्तौल बनकर किसी तीसरे की हत्या करने की कोशिश इसमें आगे अब कभी न करना।" ऐसा कहकर वह विद्युत-वेग से निकल पड़ा।

उसका मन अत्यन्त उदासीन हो गया था। तत्व को भूलकर उसने जो भूल की थी उसके लिए उसे घोर पश्चात्ताप हो रहा था। अपनी भूल की वृत्ति को भूलकर और मृत्यु के समय पिताजी द्वारा दिये गए उपदेश को भूलकर वह जो गलती कर रहा था और उस गलती का आगे चलकर जो भयानक परिणाम होता उससे पिता की आत्मा ने ही उसे बचा लिया, ऐसा उसे लगे बिना न रहा। मृत्यु-काल के समय दिये गये पिता के उपदेश के अंतिम शब्दों का एक-एक अक्षर उसे नजरों के सामने दिखने लगा। तातिया भील की मृत्यु कैसे हुई, उमाजी नाइक का विश्वासघात किसने किया और बिल्कुल अभी की बात, कर्नाटक के सरया बेरड का हाल उसे याद हो आया।

वह सावधान हो गया। उसकी अक्ल ठिकाने आ गई। जीवन के आगामी कार्य-क्रमों में स्त्री शब्द ही नहीं आने दूंगा, ऐसा निश्चय करके वह नये जोश से अपने नित्य के काम में जुट गया।

परन्तु स्त्री के दृष्टि से क्या वह छूटा? दूसरी एक स्त्री की उस पर नजर थी—वह उसे खोज कर रही थी—कौन कह सकता है वह उसे फंसा भी देती।

सुन्दरी मोहन को लगातार खोज कर रही थी। पर मोहन अलबत्ता उसकी पहुँच के पार चल दिया था।

किसी पर भी विश्वास नहीं रखूँगा, यह मोहन का बाना होने के कारण जिस समय कोई अत्यन्त साहस का काम उसे करना होता था उस समय उसके लिए वह अकेला ही निकल पड़ता।

कपास के सट्टे, घोडों की रेसें और शेयर बाजार आदि व्यवसायों के जाने क्षेत्रों में यद्यपि वह लाखों रुपये कमा रहा था, फिर भी उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति बड़े-बड़े सेठों के घर डाके डालने की ओर ही अधिक थी। वह उसे एक प्रकार की लत थी—एक व्यसन था। रुपये लूटने की तीव्र हवस थी। इससे उसकी साहसी वृत्ति संतुष्ट होती थी और इसीलिए वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर ऐसे कामों के लिए प्रवृत्त हुआ करता था।

एक दिन उसने एक धनी व्यापारी के घर डाका डाला। उस दिन उसके दुर्भाग्य से पुलिस को इसका पता लग गया।

तिजोरी तोड़कर उसमें की लूट लेकर वह बाहर निकल ही रहा था कि उसे पता चल गया कि पुलिस उसकी टोह में है।

बँगले के पिछवाड़े से निकल कर वह बाहर सड़क पर आया। सामने के ही बँगले में संगीत का कार्य-क्रम चल रहा था। गाना सुनने आए लोगों की कारें सड़क के किनारे खडी थीं। उस संगीत कार्य-क्रम की गड़बडी का फायदा उठाकर उसने उस दिन उस सेठ के बँगले में घुसकर चोरी करने योजना बनाई थी।

सड़क के किनारे खड़ी कारों में से किसी एक में बैठकर रफूचक्कर

हो जाने की गरज से वह सड़क पार कर ही रहा था कि सूँ-सूँ आवाज करती हुई एक गोली आकर उसके हाथ में लगी। प्राणों की बाजी लगा कर वह भाग खड़ा हुआ और पीछा करते आ रहे पुलिस वालों को चकमा देकर पुनः उसी जगह आ पहुँचा जहाँ वे कारें खड़ी थीं। वह चुपचाप एक कार में दुबक कर बैठ गया और दरवाजा बन्द कर लिया।

गोली की आवाज होने के कारण संगीत का कार्य-क्रम उखड़ गया। लोग एकदम बाहर निकल पड़े। कार्य-क्रम बन्द हो गया। लोग अपनी-अपनी कार में जाकर बैठने लगे।

मोहन जिस कार में बैठ गया था, वह कार संयोग से सुन्दरी की निकली। वह आकर कार में बैठ ही रही थी कि उसे लगा जैसे कोई दूसरा भी उसमें बैठा है। सुन्दरी की जगह कोई दूसरी स्त्री होती तो घबड़ा कर चीख पड़ती, पर वह चुप रही। उसने भीतर ठीक से देखा। दोनों एक दूसरे को पहचान गये। कुछ भी न बोल, उसने ड्राईवर को गाड़ी एक दम स्टार्ट करने का इशारा किया। मोटर स्टार्ट हुई थी कि पुलिस की निगाह उस पर पड़ गयी। जहाँ कार खड़ी थी वहाँ खून की कुछ बूँदें टपक पड़ी थीं। वे पुलिस की पैनी नजरों से न बच पाईं।

सुन्दरी अपने घर जा पहुँची। उस समय जख्म से खून लगातार बहते रहने के कारण मोहन कमजोर होता जा रहा था। हाथ पकड़ कर सुन्दरी उसे अपनी बैठक में ले गई। उसे आराम से बिठा कर उसका जख्म धोकर बाँधने लगी। इतने दिनों के बाद उसके मन की मुराद इतने विलक्षण रीति से पूरी हुई थी। इस कारण जितना उसे आनन्द हो रहा था उतना ही जख्म के कारण हुई उसकी दयनीय अवस्था देखकर वह घबड़ा उठी थी।

मोहन का हाथ उसके हाथ में था। कपड़े की पट्टी वह उसे बाँध रही थी, परन्तु उसे बाँधते समय उसका दिल उसके हाथ निकला जा रहा था। उसे लग रहा था कि जख्म बाँधना छोड़ कर अपनी दोनों बाँहें उसके गले में लपेट दे।

भेर सो और भी फड़कते हुए हैं। जरा तशरीफ रखिए न, सरकार !"

"माफ कीजिए—माफ कीजिए !" इन्सपेक्टर बोला—"खिद्मत आपको तकलीफ क्यों हो? हमें अब दूसरी तरफ जाकर तलाश करना होगा। अभी माफ कीजिए।" ऐसा कहकर वह अपने सिपाहियों के साथ चल दिया।

फिर भी सुन्दरी गा ही रही थी— "वे पास रहें या दूर रहें, नजरों मे समाये रहते है ····"

नौकरानी द्वारा यह खबर दिये जाने पर भी कि पुलिस वाले काफी दूर निकल गये हैं और सड़क पर अब वहीं दिखाई भी नहीं देते, सुन्दरी थोड़ी देर तक और गाती रही।

फिर गाना समाप्त करके उसने हारमोनियम बन्द किया। आलमारी का दरवाजा खोला। मोहन करीब-करीब अचेत अवस्था में वहाँ जैसे-तैसे सिकुड़कर बैठा हुआ था। दरवाजे के खुलते ही झोंका खाकर वह सुन्दरी के बदन पर गिर पड़ा।

मुन्दरी ने उसे सँभाल कर उठाया और भीतर के कौच पर उसे लिटाना चाहा, पर इसी समय मोहन सावधान हो गया और उसने उसे धकेल कर उसे दूर हटा दिया।

अब वह अच्छी तरह होश मे आ गया था। सुन्दरी ने एकदम कमरे की खिड़कियाँ और दरवाजे बद कर लिये।

मोहन उठ कर खड़ा हो गया और उसके सामने जाकर बोला— "क्यों किया यह?"

"क्या?"—सुन्दरी ने पूछा।

"मुझे क्यों बचाया?" मोहन ने कठोर स्वर मे पूछा।

सुन्दरी सिर्फ हँसी। अपना सारा हृदय निचोड़ कर उसकी सारी अपनी नजरों में समेटकर हँसी।

हँसो मत।" मोहन रुखाई से बोला—बोलो क्यों बचाया मुझे? मुझे पहचाना?" सुन्दरी ने गर्दन के इशारे से जब "हाँ" कहा तब

वह बोला—"तो मुझे पहचान लिया तुमने ? जानती हो ? मैं बैरी हूँ केशवलाल का—"

पुनः सुन्दरी ने हुंकारी भरी, तब वह बोला—"फिर भी बचाया मुझे ?" एक बार सुन्दरी ने हुंकारी भरी, आँखें भर-कर, आँखों में प्राण सिमेटकर और उसकी ओर बडी आतुरता से देखते हुए उसने यह हुंकारी दी थी। तब उसकी ओर देखते हुए क्रोध से आँखें तरेरकर मोहन बोला—"क्यों ?"

"क्यों !" सुन्दरी बोली। उसने एक गहरी साँस ली। उस आह को सुनते ही मोहन ने भी उतनी ही कठोरता से धिक्कार-प्रदर्शक उद्गार निकाला।

"मैं केशवलाल नहीं।" मोहन बोला—"समझी ? मैं केशवलाल नहीं। हँसो मत। ऐसी औरतों के चक्कर मे फँस जाऊँ, ऐसा मैं नामर्द नहीं। अपने ये आलिंगन केशवलाल जैसे उल्लुओ के लिए ही रख छोडो।" ऐसा कहकर वह बाहर जाने लगा।

"ठहरो।" उसे रोकती हुई सुन्दरी बोली—"तुम्हारी हालत इस वक्त बाहर जाने लायक नहीं।" मोहन बड़े जोर से हँस पडा। यह देख वह गभीर हो गई। कामुकता का जरा भी लक्षण उसकी मुद्रा पर अब नही दिख रहा था। प्रौढ़ गभीर और वत्सल स्त्री-जाति की आत्मीयता से बोली—"औरत की नजर है यह। मर्द नही जानते यह। नहीं समझते कि औरतें हैं, इसीलिए मर्द हैं। बड़े मर्द हो तुम, मानती हूँ, पर अगर औरतें न होती तो सारे मर्द नामर्द हो जाते। नारी के बिना पुरुष दुर्बल होना है और अब तुम घायल हो गये हो। इस समय दुर्बल से भी दुर्बल हो गये हो तुम, अगर इसी हालत मे चले जाओगे तो पकड़ लिए जाओगे।"

"इससे तुम्हें क्या वास्ता ?" मोहन बोला, "पकड़ें मुझे। तुम्हें उससे क्या करना है ?"

"बैठो यहाँ।" हुकूमत-भरी आवाज मे सुन्दरी ने डाँटकर कहा—

"तुम नहीं जा सकते ।"

मोहन उसकी आँखों में आँखें डालकर देखने लगा । बिल्लौरी मकान में खड़ी हुई सुन्दरी की आत्मा जरा भी नहीं डगमगाई ।

"क्यों नहीं जा सकता ?"—मोहन दाँत पीसते हुआ बोला—"क्या इसीलिए कि मुझे पुलिस वाले पकड़ लेंगे ? यदि मुझे पकड़ लिया तो क्या हो जायेगा ? यदि सड़क के चोर को पुलिस पकड़कर ले गई तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायेगा ? तुम्हें इतनी फिक्र क्यों ?"

"मैं एक बार कह चुकी न कि मैं एक स्त्री हूँ ।"

"होगी तुम स्त्री । मुझे इससे क्या मतलब ?"

"तुम्हें भले ही मतलब न हो, पर मेरा यह कर्तव्य है । स्त्री-जाति का कर्तव्य है, दुर्बलों की रक्षा करना ।"

"पुन कहता हूँ ।" - मोहन चिल्ला पड़ा —"मुझे दुर्बल मत कहो । कोई मुझे दुर्बल कहे, यह मैं कभी बरदाश्त नहीं करूँगा । यदि तुम कहोगी फिर भी बरदाश्त नहीं करूँगा, समझीं ।"

सुन्दरी फिर हँस दी ।

"हँसो नहीं ।" —मोहन बोला, "तुमने क्या यह सोचा कि उसका से मुझे मार डालोगी ? तुम जानती हो, मैं केशवपाल का दुश्मन हूँ ! तुम केशवपाल की कोई भी हो, तुम्हें उसके साथ बेईमानी नहीं करनी चाहिए । मुझे पकड़ लिया गया तो केशवपाल का एक वैरी कम हो जायेगा, क्या ऐसा नहीं लगता तुम्हें ?"

"नहीं-नहीं ।" वह गिड़गिड़ाकर बोली ।

"क्या नहीं ?" मोहन रुखाई से बोला ।

सुन्दरी ने गर्दन झुका ली । उसे लगा उसके मन का कलश फूट गया और अपने हृदय को खोलकर दिखाने की भूल उससे हो गई । मन में उठ रही भावना के आवेश को दबाकर बड़ी गंभीरता से वह बोली—"ऐसी नासमझी न करो । जान-बूझकर खाई में न कूदो । भाग्य किसी के हाथ में नहीं । जानबूझकर दुर्भाग्य को बुलाना अच्छा नहीं ।"

"बस, बस । चुप रहो । काफी सुन लिया ।"—मोहन बोला, "मुझे पकड लेंगे, जेल मे ठूँस देंगे, फाँसी पर चढा देंगे; पर तुम्हे इससे क्या करना है ?"

"जब ऐसा कुछ कह देते हो तो मेरे हृदय मे बाण लग जाता है ।"

"अच्छा यह बात है ?" —मोहन उसे मुह चिढा कर बोला—"तुम्हें बाण लग जाता है । अरे वाह ! क्या तुम सोचती हो कि तुम्हारा जादू मुझ पर चल जाएगा ? मैं केशवलाल नही, समझी ? ऐसे विलास मुझे पसन्द नही । घृणा है मुझे ऐसे नखरो से । मै स्वतन्त्र मनुष्य हूँ। मैं किसी की पकड़ नही चाहता अपने पर —" ऐसा कह कर वह जाने लगा ।

उसे पुनः रोक कर सुन्दरी बोली —"पर यह जख्म ।"

"कौन सा ?" मोहन ने पूछा ।

"यह" सुन्दरी बोली—"अभी जो मैंने बाँधा है । अभी तक खून बह रहा है उससे ।" ऐसा कह कर उसने उसका हाथ पकड लिया ।

बड़ी कठोरता से उसके हाथ से हाथ छुडाकर वह बोला—"काफी हो गई है यह चापलूसी ।"

"चापलूसी नहीं है यह ।" सुन्दरी बोली—"यह नारी का हृदय है ।"

मोहन उतने ही तिरस्कार से हँसने लगा । उसे इस तरह हँसते देख वह बोली—"हँसो मत । मुझे जख्म होता ऐसे है हँसने से । मेरे जख्म को बाँधने वाला कोई नही, मेरे इस जख्म से खून भी नही बहेगा । खून जम जाता है इस जख्म का, तुम नही समझ पाओगे यह ।" एक लबी आह भर कर वह बोली—"खैर, मेरे जख्म की बात छोड़ दो, पर कम से कम इस जख्म की फिक्र करो । चाहो तो मेरी कार से जाओ । तुम्हे घर तक पहुँचा देगी ।"

"क्यो ?" मोहन ने चुभते हुए शब्दो मे कहा—"क्या मेरा मुकाम पता जानने के लिए ?"

"जाओ, चाहे जैसे जाओ।" सुन्दरी बोली—"मुझे तुम्हारा पता जानने की जरुरत नहीं।"

मोहन दरवाजे तक गया, परन्तु उसे दरवाजे पर रोक कर वह बोली—"एक वचन देते जाओ मुझे।"

"कैसा वचन ?"—मोहन ने प्रश्न किया।

"फिर मिलने का।" सुन्दरी बड़ी आजिजी से बोली—"मिलोगे न ? फिर मुलाकात होगी न ?"

"अच्छा, अच्छा।" कह कर मोहन वहाँ से निकल पड़ा।

जख्मी मनुष्य की तरह कमजोर हुई सुन्दरी एक कोच पर पड़ गयी। उसे लगा जैसे सारा घर गोल-गोल घूम रहा है। एक नवीन भावना उसके हृदय में जाग उठी थी। उस भावना से बोझिल हो जाने के कारण वह मोहन की खोज कर रही थी। अचानक वह उसके हाथ लग गया था, पर वह उसे पकड़ कर नहीं रख सकी।

उसे अपने पर गुस्सा हो आया। कितने ही लोगों को उसने अपनी अंगुलियों पर नचाया था, पर मोहन ने उसे झिटकार दिया। उसके जीवन में यह अनुभव पहला ही था। इस पराजय से उसे दुख नहीं हुआ।

इसी प्रसंग का चिन्तन करती हुई बहुत देर तक वह उसी तरह बैठी रही।

—

पादरी बाबा के मिशन का काम इस समय उतने सन्तोषजनक ढग
नहीं चल रहा था। अमरीका से रुपयों की जो मदद आती थी उसका
ाना आजकल करीब-करीब बन्द हो गया था। पहिले के अमेरिकन
ण्डों की जो रक़में जमा थीं उनके ब्याज से ही मिशन के सारे काम
से-तैसे चल रहे थे। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी मिशनो के खर्चों मे
टौती की कैंची लग गई थी। उसी का परिणाम शरणगांव मे मिशन
रा सजायी गयी गृहस्थी को भी भोगना पड़ा।

मिशन द्वारा चलाये गये स्कूल और प्रसूतिगृह के प्रति सभी को बड़ा
दर था। स्कूल का खर्च तो जैसे-तैसे निभ रहा था, परन्तु प्रसूति-गृह
खर्च दिन-प्रति-दिन बढ़ने के कारण पैसो की बडी खींचातानी होने
गी थी। जो दानी दुर्गाबाई को उसके कार्य के लिए पैसे देने को तैयार
और जिन पैसों के मूल मे पाप है ऐसा कहकर दुर्गाबाई जिन्हे स्वीकार
हीं कर रही थी, वे पैसे वे लोग यदि मिशन-हाऊस के लिए दे देते तो
दरी बाबा उन्हे लेने से इन्कार न करता, परन्तु ये दानी अपने को
न्दू धर्माभिमानी कहते थे। वे पर-धर्म के लिए पैसे क्यो देते ? उनकी
न-दया की जड़ में यह सकुचित भावना घर किये थी कि वे सिर्फ
धर्म के लिए ही दान करेंगे . वे वह दान मिशन-हाऊस के
ए देने को
े मिशनरी
कर र
द्वारा हो

सब काम लोगों को ईसाई बनाने के लिए ही नहीं हो रहे थे। ईसाई बनाने की अपेक्षा मानवता का भाव ही उन कामों में अधिक रहता था। इसका भान इस हिन्दू और जैन धर्माभिमानियों को न हुआ और इसीलिए धर्मान्तर करने वाले मिशन के प्रसूतिगृह को बन्द कर देने का मौका पादरी बाबा पर आ गुजरा।

घर में होने वाली प्रसूतियों में स्त्रियों को जो कष्ट होते हैं वैसे कष्ट प्रसूतिगृह में प्रसूतियाँ होने से उन्हें नहीं होते। घर में जचकी होने से जच्चा महीने भर तक कोठरी से बाहर नहीं जा सकती। वहीं यदि प्रसूतिगृह में जाय तो दस-बारह दिनों में ही घर आकर काम भी कर सकती है। यह प्रत्यक्ष देखकर, गरीब लोग भी उस प्रसूतिगृह से फायदा उठाने लगे थे और इस कारण ही उस संस्था के चलाने का खर्च बढ़ रहा था।

अभी तक उस प्रसूतिगृह में सब को मुफ्त भरती करने की सहूलियत रखी गयी थी। अब यदि जचकी के लिए लोगों से फीस ली जाने लगे तो जन-दृष्टि से यह अनुचित होगा, ऐसा सोचकर प्रसूतिगृह में भरती की जाने वाली स्त्रियों की संख्या को सीमित करने का पादरी बाबा ने निश्चय किया।

दुर्गाबाई को यह निश्चय उचित प्रतीत न हुआ। इस कार्य में नेतृत्व स्वीकार कर उसने प्रसूतिगृह के लिए चन्दा एकत्रित करना शुरू किया। दुर्गाबाई की उस प्रसूति-गृह के प्रति एक प्रकार की आत्मीयता थी। उसके कुमार का जन्म उसी प्रसूतिगृह में हुआ था। कुमार के समय उसकी अत्यन्त असहाय हालत थी और उस हालत में भी इसी संस्था ने उसे जिन्दगी दी थी। इसलिए धर्म-भेद का संकुचित विचार मन में न लाकर उसने उस संस्था को जीवित रखने के लिए कमर कस ली।

दुर्गाबाई के इस नेतृत्व को स्वीकार कर लेने के कारण लता को भी जोश आया। उसे लगा इस कार्य के लिए वह भी कुछ करे। उसने एक सांस्कृतिक कार्य-क्रम करने का निश्चय किया। नृत्य, संगीत, छोटा-सा

क इस प्रकार का वह कार्य-क्रम था। कालेज की परीक्षा समाप्त हो
के कारण कुमार बम्बई से घर आ गया था। वह भी लता के इस
में हाथ बँटा रहा था। थोड़े ही दिनों मे उसका रिजल्ट खुलने
ा था।

नित्य की भाँति गीता पाठ के लिए लता दुर्गाबाई के घर आई थी।
वह जाने लगी तो कुमार नाराज हो गया। आजकल कालेज में जाने
ाद से दोनों की भेंट थोड़े समय के लिए ही होती थी। लता अब
ी बड़ी भी हो गई थी। जन-निन्दा से बचने के लिए वह कुमार से
दूर रहने की कोशिश करने लगी थी और यही कुमार को बहुत
ता था।

"मुझे अब जाना चाहिए।"—लता बोली—"बाबा जी राह देखते
।"

"फिर जाओ न।" कुमार बोला—"रोकता कौन है ?

"क्यों ? नाराज हो गए क्या ? नाराज मत हो। हमें दुनिया की ओर
थोड़ा देखना चाहिए। इधर मैं माँ के पास आती हूँ तो कोई कुछ
कहता। परन्तु अगर तुम्हारे साथ घूमने-फिरने लगूँ तो गाँववालों
दृष्टि में वह अनुचित दिखेगा।"

"फिर यहीं आकर रहो न ?"

"यहाँ आकर कैसे रह सकती हूँ ? क्या जन-दृष्टि मे वह भी अनु-
नहीं होगा ?"

"लोगों की परवाह ही क्यों की जाय ?"

"नहीं जी, ऐसा कहने से काम नही चलेगा। दूसरो की बात अलग
कम-से-कम मुझे तो लोगों की परवाह करनी ही होगी। मैं कौन हूँ,
की हूँ, यह कोई भी नही जानता, मैं भी नही जानती। इसलिए
लोगों से डरना चाहिए।"

"फिर क्या किया जाय ?"

"एक उपाय है—" कुमार के मुँह की ओर आतुरता से देखते हुए

लता डरते-डरते बोली —"परायी होकर रहने की अपेक्षा···" लता पुनः रुकी और बोली—" तुम्हारे घर की कोई होकर रहने से···हाँ, पर यह कैसे होगा—तुम्हारे घर में नाता जोड़ने के लिए मुझे अपनी जाति और गोत्र मालूम होना चाहिए—और मैं हूँ ऐसी···"

"जाति और गोत्र की मैं परवाह नहीं करता।" कुमार बोला—"मेरी माँ भी उसकी परवाह नहीं करेगी, परन्तु कम-से-कम इस समय तो यह सम्भव नहीं है। पहिले मुझे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। कितने ही ऋण मुझे अभी चुकाने है—मातृ-ऋण, देव-ऋण, ग्राम-ऋण, सारे गाँव का कर्जदार हूँ मैं। सारे गाँव ने मुझे जिन्दा रखा है। मेरी शिक्षा के लिए सारे गाँव के लोग यहाँ आकर कड़ा परिश्रम कर रहे हैं।"

"हाँ, यह सच है।" लता बोली—"परन्तु हम दोनों का विवाह होने के लिए यह ऋण-अदाई किस तरह बाधा लाती है ?"

"यह बात नहीं !" कुमार बोला—"अभी किसी भी प्रकार के बन्धनों में मैं बँधना नहीं चाहता। माँ ने मेरे लिए एक दिशा निश्चित कर दी है। एक विशेष कार्य के लिए मैं अपना जीवन उत्सर्ग कर दूँ ऐसी उसकी इच्छा है। वह कार्य है, दुनिया से गुनाहों को हटा देना। इसके लिए मुझे बैरिस्टर होना चाहिए। बैरिस्टर होने के लिए विलायत ना होगा। विलायत जा सकूँ, इसलिए मैंने अध्ययन करने में मन- गैना एक कर दिया है। मैं फर्स्ट क्लास में पास होऊँ इसलिए मैंने समय की भी परवाह नहीं की। इसीलिए अभी मुझे कोई बन्धन नहीं हिए।"

"पर विलायत जाओगे कैसे ?"

"हाँ ! यह भी एक सवाल ही है। इसका उत्तर भगवान ही जाने। मैं जाऊँगा बेशक, यह सच है। माँ का आशीर्वाद जो है मुझे और विश्वास है कि वह कभी झूठ नहीं होगा। खैर, छोड़ो ये बातें— हारे सांस्कृतिक कार्य-क्रम का क्या हुआ ? कब है न तुम्हारा कार्य- र ? कितनी बिकी हुई टिकटें की ?"

"मुझे क्या करना है टिकटों की बिक्री से ?" लता बोली—"वह
ारा जिम्मा गांव के लोगों ने उठाया है। बाबा जी खुद घर-घर घूम
हे हैं। उन्हें यह साबित करना है कि मैंने उनकी संस्था के लिए काफी
पया प्राप्त करा दिया है।"

"तुम्हारा कार्य-क्रम सफल हो।" कुमार बोला।

लता उसे मुंह चिढ़ाकर बोली—"तुम्हारा कार्य-क्रम सफल हो।
बिल्कुल दादाजी ही बने जा रहे हो तुम तो ?"

कुमार गम्भीर होकर बोला—"बचपन से ही मैं बूढ़ा हूँ, लता !
तुम्हारे जीवन में जैसी एक न्यूनता है उसी प्रकार मेरे जीवन में भी है।
बचपन में यह मैं समझ नहीं पाता था। अब जानने लगा हूँ। बचपन में
यद्यपि मैं उस न्यूनता को नहीं जानता था, पर मेरी मां उसे ध्यान में
रखकर ही मुझे शिक्षा दे रही थी। उसका मेरे मन पर प्रभाव पड़ रहा
था। अब उस न्यूनता को जान लेने पर वह प्रभाव दूना हो गया है
और उस कारण ही मैं बिल्कुल दब गया हूँ। इसीलिए मुझे लगता है कि
अपने खुद का कोई पुरुषार्थ दिखाये बिना मैं गृहस्थी में न पड़ूँ।"

कुमार की ये बातें सुनते ही लता की मन स्थिति बड़ी अजीब-सी हो
गई थी। यदि अपने को वह अनाथ समझे तो अनाथ थी। पर अनाथ
कैसे ? उसका पूरा प्रबंध हो ही रहा था। ऐसी अजीब-सी मन स्थिति में
उसका मन उसी से जैसे कुछ छिपा रहा था। यह 'देवी' का मामला
क्या है, यह जानने की उसे भी जिज्ञासा हो गई थी। कुमार के बोलते
समय वह इसी विचार में खो गयी थी। इसीलिए कुमार ने क्या कहा
इसका उसे कोई पता न था।

"क्या सोच रही थी ?"—कुमार बोला—"मैं सिर्फ पागल की
तरह बके जा रहा था, पर तुम्हारा मन कहीं अन्यत्र भटक रहा था..."

"हाँ, ऐसा हो गया था सही।" लता बोली—"हम दोनों ही कुछ
ऐसी विलक्षण परिस्थिति में हैं कि तीसरे को इस की कल्पना ही नहीं
हो सकती—और जरूरत ही क्या है कि हो ? हमारा रहस्य हमें ही

मालूम हो जाय कि हो गया !—खैर, छोड़ो यह विषय। कैसे किये हैं पेपर्स ?"

"आशा तो है कि फर्स्ट क्लास में पास होऊँगा, पर मेरा परिश्रम सार्थक तो तभी होगा जब फर्स्ट क्लास आऊँ।"

इसके बाद वे दोनों ही फिर परीक्षा की ही बातें करने लगे। इसी समय उधर मिशन-हाऊस में सुन्दरी आई थी। मोहन से भेंट होने के बाद उसका मन उदास हो गया था। उदासी हटाने के लिए यद्यपि वह शरणगाँव आई, फिर भी समाधान होने के बजाय उसकी उदासीनता ही और अधिक बढ़ गई।

वह पादरी से बोली—"मेरे मन की क्या कुछ भी कल्पना नहीं हो रही है आपको ? क्यों मुझे तंग कर रहे हैं आप ? क्या मैं उसे सिर्फ देखूँ भी नहीं ? अब लता बड़ी हो गयी है—वह कैसी दिखती होगी, कैसी बोलती होगी ? कैसा बर्ताव करती होगी ? इसकी रोज मन में मैं कल्पना किया करती हूँ, पर कल्पना के चित्र क्या मेरे मन को कभी सन्तोष दे सकते हैं ? ऐसा कौनसा पाप किया है मैंने कि दीवाल के उस तरफ वह हो और मैं उसे सिर्फ देखने से भी वंचित रहूँ ?"

"यह तो तुम्हीं जानती हो।"—पादरी बोला—"इसीलिए ही तो तो उसे मेरे हवाले किया है न ?"

"पर क्या मैं उसे देखूँगी भी नहीं ?"

"नहीं-नहीं-नहीं। मैं हजार बार कहता हूँ—नहीं। मैं तुम्हें उससे मिलने दूँगा।"

"क्यों ?"

"अब वह छोटी नहीं। वह समझने लगी है। उसमें दृष्टि आ गयी यदि वह तुम्हें सिर्फ देख ले—या उससे मालूम हो जाए कि तुम उसकी र हो, तो वह एकदम हिम्मत हार बैठेगी। तुम्हारा मन अलग प्रकार है और चेहरा अलग प्रकार का है। इस तरह तुम्हारा एक अजीब-व्यवहार है। तुम अपने को खुद समझ लेती हो। पर तुम वास्तव

मैं कौन हो, दुनिया यह नहीं समझ पाती। देखने वाला तुम्हारे मन का अन्दाज नहीं लगा सकता। इसीलिए कहता हूँ कि तुम्हारा चेहरा देखकर ही लता निरुत्साहित हो जायगी। जिस तरह दुनिया नहीं जान पाती, उसी तरह वह भी तुम्हारे मन को नहीं जान पायेगी। तुम्हारे चेहरे से ही वह जानेगी।"

"फिर मैं क्या करूँ? इतने साल राह देखी। अब और कहाँ तक प्रतीक्षा करूँ?"

"अनादि काल तक।"

"कितने कठोर हैं आप? बचपन मे ही हम दोनों का अलगाव हो गया। हो क्या गया, मैंने ही उसे अपने से बलात् दूर कर दिया। उसे आपके हवाले कर दिया। आपने उसे छोटी से बड़ी किया। कुमार की माँ के समान उसे एक अच्छी गुरुआईन मिल गई। वहाँ वह सेवा-धर्म की शिक्षा पा रही है। यह सब आप ही की कृपा से हुआ है।"

"उस भगवान की कृपा से।"—पादरी आकाश की ओर देखता हुआ बोला।

"पर उस भगवान की कृपा मुझ पर क्यों नहीं होती?"—सुन्दरी रुआँसी होकर बोली—"हम दोनों बहिनों के बीच क्यों आ रहा है वह भगवान?"

"उसके कल्याण के लिए—तुम्हारे कल्याण के लिए।"

"क्या कल्याण के लिए ही हम दोनों में ऐसा अलगाव हुआ है?—" होठों तक आई सिसकी को निगलती हुई सुन्दरी बोली—"नहीं बाबा जी! मैं आपके पैर पड़ती हूँ। कम-से-कम एक बार तो मुझे उससे मिल लेने दीजिए—उसे समझाकर छाती से लगा लेने दीजिए—इतने लम्बे वियोग के बाद अब तो अपना जी ठंडा कर लेने दीजिए मुझे।"

"नहीं-नहीं-नहीं।"—पादरी जबरदस्ती अपने मन को दृढ़ करके बोला—"लड़की! मन को पत्थर बना लो। तुम्हारी नजर भी उस पर नहीं पड़नी चाहिए। तुम्हारी ही डीठ लग जायगी उसे। नाश हो जायगा

उसका। स्नेही जनों की नजर ही बुरा असर करती है, ऐसा लोग कहते हैं—ऐसा नहीं होना चाहिए।"

दुख का आवेग सुन्दरी के लिए बेकाबू हो उठा। हृदय में जबरदस्ती दबाकर रखा गया रुदन एकदम बाहर उमड़ पड़ा और फूट-फूटकर रोती हुई वह नजदीक की बैठक पर गिर पड़ी। वात्सल्यपूर्ण ममता से उसके मस्तक पर हाथ फेरता हुआ पादरी बोला—

"एक उपाय है—नहीं, एक मौका है ···"

तड़ाक से उठकर सुन्दरी खड़ी हो गई और बोली—"मौका! क्या लता से मुलाकात होने का मौका?"

"हाँ—" पादरी बोला—"परन्तु मुलाकात नहीं, सिर्फ दूर से देखने का मौका। कल हमारे प्रसूतिगृह की मदद के लिए एक जलसा होने जा रहा है यहाँ। वह उसमें काम करेगी।"

"कब?"—बड़े सकपकाए हुए मन से सुन्दरी ने पूछा।

"हाँ कल रात को।"—पादरी बोला—"तब तक तुम यहीं कहीं ठहर जाओ।"

"यहाँ!"—सुन्दरी बोली—"मैं यहीं आपके बंगले में रह जाती हूँ। किसी अलग कमरे में छुपकर बैठी रहूँगी। बिल्कुल सामने नहीं आऊँगी। कम-से-कम छुप कर ही देख लूँगी उसे।"

"नहीं।"—पादरी बोला—"कल ही देखना जलसे में, आम लोगों में बैठकर। यह मिशन-हाउस है। भगवान का घर है। कोई तुम्हें यहाँ रहते देख ले तो यह ठीक न होगा। तुम लौटकर स्टेशन चली जाओ और वहीं वेटिंग रूम में रहो। माफ करना—मुझे कठोर होना पड़ रहा है, पर अपने कार्य के लिए इस स्थान की पवित्रता बनाए मुझे रखनी चाहिए, समझी? मैं एक मिशनरी हूँ। अच्छा, अब जाओ तुम।"

"हाँ, यह सच है।"—सुन्दरी बोली और वहाँ से उठकर एकदम बाहर चल दी। [illegible] की भाँति आँसू उसके साथ आया था। उसने आँसू को [illegible] और [illegible] के लिए कहा। सुन्दरी स्टेशन पर ही एक दिन

रहेगी, इस पर भीकू को ताज्जुब हुआ।

वह बम्बई गया और सीधा केशवलाल से जाकर मिला। आज तक पोशीदा रखे शरणगाँव के इन चक्करों का सारा हाल उसने केशवलाल के कानों मे पहुँचा दिया।

"मिशनरी !" केशवलाल बोला—"पादरी ? क्या दिखने में खूब-सूरत है ? नौजवान है क्या ?"

"नहीं-नहीं। बिल्कुल बूढ़ा है वह।"

"बूढ़ा है ! तो शायद धनी होगा ?"

"अजी साहब पादरी कहाँ से धनी होगा ?"

"फिर यह क्या बात है ? क्यों भाग रही है वह उसके पीछे इतने सालों से ? अभी तक मुझसे यह क्यों छिपाकर रखा उसने ?"

"उसने किसी से भी यह रहस्य न कहने की सौगंध खाई थी।" भीकू बोला—"वह सौगंध भी टूट जाती। आज तक वह सिर्फ वहाँ जाती थी, घड़ी-भर बैठकर बातें करती थी और तुरन्त लौट आती थी। पर आज पहिली बार ही वह वहाँ रह रही है—उस पादरी के घर नहीं पर स्टेशन के वेटिंग रूम मे, इसीलिए मुझे शक हुआ। ऐसी औरतों के झमेले आपकी समझ में नहीं आ सकते। सुन्दरी जैसी औरतें कब और किस तरह किस के गले पड़ जायंगी, यह न आप कह सकते हैं और न मैं कह सकता हूँ।"

"मुझे शक होता है।"—केशवलाल बोला।

"शक होता है ? किसका ? क्या मेरा ? उसके पीछे इतनी बार गया, उस पर इतनी कड़ी निगाह रखी और जब उसे यूँ अचूक पकड़कर आपको तुरन्त बता दिया तो आप मुझी पर शक कर रहे हैं ! यह भी क्या कोई न्याय हुआ ?"

"पर बूढ़े पर कैसे आशिक हो जायगी वह ?"

"यह पूछने की क्या जरूरत ? कल चलिए मेरे साथ, मैं विश्वास कराये देता हूँ।"

"किस तरह ?"

"प्रत्यक्ष दिखा देता हूँ—फिर तो संतोष हो जायगा ?" भीकू बोला फिर वह केशवलाल की चापलूसी करने लगा। उसके अधिक गले पड़ने लगा। बोला—"पर पहिले मुझे एक हजार रुपये दीजिए न ?"

"यह बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी, भीकू !" केशवलाल चिढ़ कर बोला—"तुम हमारा काम बहुत सचाई से और मुस्तैदी से करते हो इस में शक नहीं। कभी-कभी तो बिना मेरे कहे ही तुम मेरा काम कर देते हो, इससे मैं खुश हूँ। पर साथ ही तुम में एक बड़ा एक ऐब है। हर बार पैसे के लिए हाथ सामने बढ़ा देते हो। यह बेशक कोई अच्छी बात नहीं। मैं तुमसे 'नहीं' नहीं कहना चाहता।"

"मैं आपसे कोई इनाम नहीं मांग रहा हूँ, सेठजी !" भीकू क्रोध से बोला—"मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं और पत बनाये रखने के लिए मुझे एक दुकान भी तो चलाना चाहिए। उस दुकान के जोर पर ही मैं आपके काले कारनामों में हाथ बँटा पाता हूँ। वरना······"

"अच्छा, अच्छा !" केशवलाल बोला—"कल आकर चैक ले जाना।"

"फिर कल चलिएगा न जलसे में ?"

"कौन सा जलसा ?"

"एक जलसा ही है वहाँ।" भीकू बोला—"क्या है, सो कल आप देख ही लेंगे।"

जैसा तय हुआ था उसके मुताबिक भीकू को पैसे मिल गये और दोनों शरणगाँव के लिए रवाना हुए।

उस दिन दुर्गाबाई ने गाँव के सब लोगों को निमन्त्रित किया था। आसपास के गाँव की महिलाएँ भी निमन्त्रित थीं। आज हमें कुछ देना पड़ेगा, इस विचार से आने वाली महिलाओं के साथ महज यह देखने कि वहाँ क्या होगा और भी अनेक महिलाएँ आई थीं।

दुर्गाबाई के आश्रम में यह सभा भरी थी। आरम्भ में दुर्गाबाई ने कहा—"कल यहाँ एक जलसा होने वाला है। उसे करने की जिम्मेदारी हमारे बच्चों ने उठाई है। हमारे बाबा जी के दवाखाने के लिए आज धन की जरूरत है। चूँकि इस कार्य के लिए धन इकट्ठा करने का बीड़ा हमारे बच्चों ने उठाया है इसीलिए क्या हमें चुप बैठ जाना चाहिए? हमने क्या किया है इस शुभ कार्य के लिए? विदेश से धन लाकर उन्होंने यह दवाखाना चलाया था। अब उन्हें वहाँ से धन नहीं मिल रहा है। हम सब लोगों ने इस संस्था से लाभ उठाया है। उचित प्रबन्ध न होने के कारण जो अनेक स्त्रियाँ मर जातीं, उनमें से कितनी ही स्त्रियों ने यहाँ जिन्दगी पाई है। मेरा ही उदाहरण लो— किसी भी गली-कूचे में पड़ी मैं मर जाती। परन्तु यह दवाखाना था, इसीलिए आज मैं जीवित हूँ—मेरा लड़का जीवित है। हम दोनों [तुम लोगों की आज सेवा कर रहे हैं, वह केवल इस संस्था के द्वारा हमें जीवन प्राप्त हो जाने के कारण यह ऋण चुकाना होगा। डालो मेरी झोली में कुछ भी। सच्चा दान है वो यही है। ऐसा दो कि सारी दुनिया कहे कि जैसा तुमने दिया वैसा आज तक किसी ने नहीं दिया..."

"शाबाश दुर्गाबाई।" पादरी बोला—"तुम धन्य हो। आज इतने वर्षों से हम मिशनरी लोग जिस कार्य के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं—आज तीस-चालीस साल यहाँ रहकर जिसे मैं सिद्ध न कर सका, उसे तुमने इतनी थोड़ी अवधि में प्रत्यक्ष रूप में किया। तुम धन्य हो।"

"पर यह क्यों हुआ, बाबा जी ?"—दुर्गाबाई बोली—"यह क्यों वह रहे हैं कि आप से सिद्ध नहीं हुआ ? आपने प्रयत्न किया, पर वहाँ धर्म का नाम लाद। सब लोगों को यह लगता था कि आप जो भी कर रहे हैं लोगों को ईसाई बनाने के लिए कर रहे हैं। इसलिए ये लोग आप से दूर ही रहे। वे पद-पद पर महसूस करते थे कि आप विदेशी हैं। गाँव के बाहर रहते थे आप, और वहाँ से आकर गाँव में घूमते थे। मैं इन्हीं में से हूँ, इन्हीं में रही हूँ, इसीलिए मुझे यह साध्य हुआ। आप दूर रहते हैं। क्षण-भर के लिए नजदीक आते हैं और फिर उपदेश करते हैं। मैं उपदेश नहीं करती, काम करती हूँ और दूसरों से करा लेती हूँ। यह आपने नहीं किया और वही हम करने वाले हैं। वह हम सब लोग कर सकें, ऐसा हमें आशीर्वाद दीजिए।" ऐसा वह कर उसने पादरी के चरणों में सिर रख दिया। उसे ऊपर उठा कर पादरी जब उसके चरण छूने लगा, तब वह बोली—"नहीं-नहीं। आप बुजुर्ग हैं। मैं आपकी बच्ची हूँ। आप जो कर रहे थे, उसे मैंने देखा और इसीलिए मुझे भी कुछ करने की स्फूर्ति हुई। इसीलिए आपका आशीर्वाद चाहती हूँ मैं।"

एकत्रित समुदाय में प्रत्येक की आँखों से आँसुओं की धारायें बह रही थी। इसी समय कोई दौड़कर आया, उसने अपने जीवन की कुल संचित पूँजी जो मुश्किल से दो चार रुपये थी पादरी की झोली में डाल दी। पादरी बाबा को लगा जैसे उपकार के बोझ से वह दबा जा रहा है।

जलसे की तैयारी बड़े जोरों से हो रही थी। टिकटों की बिक्री भी जोरों से चल रही थी। बिक्री की रकमें देखकर पादरी बाबा को खुशी

के उफान पर उफान आ रहे थे।

गाव के बाहर अमराई मे एक छोटा-सा रगमंच बनाया गया था। चारों ओर अहाता-सा घेर कर भीतर दर्शकों को बैठने की जगह बनाई गई थी। वह स्थान ऊपर से खुला था। जिन्हे टिकट खरीदने की ताकत न थी, वे अहाते के बाहर खडे होकर रगमच पर होने वाले कार्य-क्रम अच्छी तरह देख सके, ऐसा प्रबन्ध किया गया था। इस कारण किसी को कोई शिकायत नही थी।

स्वभाव से ही नृत्य और सगीत की ओर लता का आकर्षण था। ये कलायें उनके खून मे ही भिदी हुई थी। इन कलाओ की ओर उसका स्वाभाविक झुकाव देखकर पादरी बाबा ने बचपन से ही उस छोटे से गाव में भी उसे इन कलाओं की शिक्षा देने का प्रबन्ध कर दिया था। उसी शिक्षा की परीक्षा आज लता यहाँ देने वाली थी।

इस जलसे में कितने लोग आएँगे, टिकट की बिक्री से कितनी रकम इकट्ठी होगी, इसकी अब कोई चिन्ता न रह जाने के कारण लता का सारा ध्यान कार्य-क्रम को किस तरह अत्यन्त उत्कृष्ट बनाया जा सकता है, इस ओर लग गया था। उस कार्य-क्रम मे भरपूर नवीनता थी। उस गाँव मे ऐसे सास्कृतिक कार्य-क्रम में इससे पहिले किसी ने भी नहीं देखे थे। कुमार ने ऐसे कार्य-क्रम बम्बई में अनेक बार देखे थे और उन्हीं के अनुरोध से उसने कार्य-क्रम की योजना बनाई थी। परदे की ओट मे बैठ कर इस कार्य-क्रम के सारे सूत्र वही चला रहा था।

सुन्दरी को दर्शकों में बैठने का खास इन्तजाम पादरी ने कर दिया था। वह लोगों की नजरो मे रहे, पर वह स्वय आँख भर कर सारा कार्य क्रम देख सके, ऐसा ही स्थान पादरी ने उसके लिए चुना था।

नृत्य के कार्य-क्रम में जब लता मच पर आई तब पादरी ने सुन्दरी को आँख मे इशारा किया। यही लता, यही मेरी बहिन, यह सुन्दरी को बताने की जरूरत न पड़ी। उसकी स्वाभाविक नृत्य-कुशलता देखने की ओर उसका ध्यान न था। लोग उसके नृत्य की तारीफ कर रहे

की पूरी आमदनी गाँव के मिशन दवाखाने के लिए दी जायगी। यह सब किसने किया, जानती हो ?" सामने बैठी हुई दुर्गाबाई की ओर अंगुली दिखाकर बोला—"वह वहाँ बैठी है, उसने।"

"कौन है वह ?" सुन्दरी ने पूछा।

"वह गाँव की लक्ष्मी है।"—पादरी बोला—मूर्तमति माँ है हम सबकी। उसी की शिक्षा मे तुम्हारी लता बढ रही है। सच्ची हिन्दू बन गई है वह। इस गाँव के उद्धार के लिए बहुत बडा काम किया है उसने।"

"धनी है शायद ?"—सुन्दरी बोली।

"नहीं-नहीं, बिलकुल ही निर्धन है।"—पादरी बोला—"बिल्कुल बेसहारा है। सिर्फ एक लडका है उसे, इकलौता लडका। आज ही उसके बी० ए० मे फर्स्टक्लास फर्स्ट पास होने का तार आया है। लता का वह बालसाथी है। दोनो बचपन मे साथ-साथ रहे और बडे हैं। स्नेह के सम्बन्ध जुड रहे हैं दोनों मे ···· "

सुन्दरी के मन मे आशा का अंकुर पैदा हुआ। उसे लगा, वह कुमार कौन है, उसे एक बार देख लूँ। लता का उद्धार करेगा क्या वह ?

पादरी कह रहा था—"उसकी बडी महत्वाकांक्षा है कि विलायत जाकर बैरिस्ट्री पास करे, पर जायगा कैसे ? रुपये जो चाहिए वहाँ जाने के लिए।"

"आपने अभी कहा कि दोनो मे स्नेह-सबध स्थापित हो रहे हैं।" सुन्दरी बोली—"पर इसका नतीजा क्या होगा ? लता एक वेश्या की लडकी है।"

"इसीलिए तुम्हे उससे नहीं मिलना चाहिए ऐसा मैं कह रहा हूँ। जाति और गोत्र की थोथी लडियों का शिकार दुर्गाबाई नहीं होगी। उसे इन ढकोसलों की परवाह नहीं। वह बडी धार्मिक वृत्ति की है, यह सच है। पर वह कर्मठ है, पुराणपंथी नहीं। गीता के ज्ञानतत्व के प्रसाद ने उसकी दृष्टि को बडा व्यापक बना दिया है। यदि कुमार और लता के विवाह का ही अवसर आ गया तो वह उसका

विरोध न करेगी। यदि तुम्हारी अनुमति मिल जाए तो कुमार शायद उससे विवाह भी कर लेगा।" यह देखकर कि सुन्दरी का ध्यान उसके भाषण की ओर नहीं है, वह बोला —"क्या सोच रही हो सुन्दरी ?"

"मैं सोच नहीं रही हूँ।" सुन्दरी बोली—"मैं इरादा कर रही हूँ कुमार को विलायत जाना है न ? रुपयों की जरूरत होगी उसे ?"

"हाँ, काफी मोटी रकम की जरूरत होगी। मुझे तो बिल्कुल आशा नहीं कि इतनी रकम वह कहीं से जुटा सकेगा।"—पादरी बोला।

"कितने रुपये चाहिए ?"

"कम-से-कम पन्द्रह हजार तो चाहिए ही। शायद इससे भी कुछ अधिक लग जाएँ।" पादरी ने कहा।

"यदि ये रुपये मैं दे दूँ तो . . ?"—सुन्दरी आतुरता से बोली।

"तुम !" पादरी विचार करता हुआ बोला—"तुम दोगी ? पर तुम्हारे रुपये वे लोग स्वीकार नहीं करेंगे।"

सुन्दरी को धक्का लगा। मेरा धन भी पाप है क्या ? एक क्षण के लिए सोचकर वह बोली—"तो आप मेरा नाम उन्हें न बताइए। कुछ ऐसा कह दीजिए कि किसी दानी ने आपके जरिए यह रकम कुमार को विलायत भेजने के लिए दी है।"

"झूठ बोलूँ ?"—पादरी ने पूछा—"और वह भी दुर्गाबाई से ?"

"हाँ मेरे कल्याण के लिए —"सुन्दरी बोली, कम-से-कम इतना ही सत्कार्य हो जाने दीजिए मेरे हाथ से। जिन्दगी-भर पाप के गर्त में पड़ी लोट रही हूँ। मुझे कम-से-कम इतनी ही सज्जनों की थोड़ी सेवा कर लेने दीजिए। वैसे देखा जाय तो इसमें मेरा ही स्वार्थ है। बताइए —है न ? लता की भलाई के लिए . . ."

"अभी ठहरो—" पादरी बोला। कुमार को साथ लिए दुर्गाबाई आ रही थी। उसके नजदीक आते ही पादरी बोला—क्या आप जा रही हैं ?" सुन्दरी बाई की ओर अंगुल-निर्देश कर वह बोला—"ये हैं हमारी बम्बई की मेहमान। जलने के लिए जानबूझ कर बम्बई से आई

थीं—और ये हैं दुर्गाबाई, अभी अभी ही जिसके बारे में मैंने तुमसे जिक्र किया था और यह है इनका पुत्र कुमार।" उन दोनों की ओर अंगुली दिखाकर पादरी ने सुन्दरी से कहा।

दोनों ने एक दूसरे को नमस्ते किया। दुर्गाबाई ने बडी संकोच वृत्ति से सुन्दरी से उसका कुशल समाचार पूछा। उसके बाह्य स्वरूप के कारण दुर्गाबाई के मन में यह सकोच उत्पन्न हुआ था। ऐसी स्त्री से पादरी का परिचय किस तरह और क्यों हुआ, यह प्रश्न भी क्षण भर के लिए उसके मन मे उठे बिना न रहा।

यह देखकर सामने से लता चली आ रही है, कुमार अब उनके साथ चल दिया, तब पादरी बोला—"देखा! ऐसा आकर्षण होता है जवानी का। हम बूढों को कौन पूछता है अब ?"

दुर्गाबाई सिर्फ हँस दी और बिदा लेकर चल दी। उसे देखने के कारण दुर्गाबाई के मन पर हुआ परिणाम सुन्दरी के ध्यान मे आये बिना न रहा। आज तक पादरी द्वारा किये गये विरोध का मर्म अब उसकी समझ मे आ गया।

"मैं जाती हूँ अब।" सुन्दरी बोली —"गाडी का वक्त हो गया है। अब कुमार को विदा करने की जरूरत नहीं। तय हो गया है न ?"

"हाँ, तय हुआ ही समझो।"—पादरी बोला।

पादरी से बिदा लेकर सुन्दरी चल दी।

केशवलाल और भीकू अहाते के बाहर लगी भीड में खडे होकर कार्य-क्रम देख रहे थे। लता को देखने के बाद से केशवलाल बेचैन हो उठा था। पादरी को देख लेने के बाद भीकू को जो शक हुआ था वह निराधार था, ऐसा उसे लगा। लता के चेहरे मे सुन्दरी के चेहरे से जो दिखाई समानता थी, वह उसके ध्यान मे आये बिना न रही। इसी उम्र में उसने सुन्दरी को अपने आश्रम पर रखा था। आज वह उसे सुन्दरी ही लगी। जवानी के दिनों की वह पुरानी भावना जाग उठी।

आसपास के लोगों से पूछताछ करने पर उसे लता की जाति आदि

जानकारी प्राप्त हो गई थी। यह देखकर कि सुन्दरी ने उससे छल किया वह उस पर क्रोधित हो गया।

स्टेशन पर उसने सुन्दरी को गाँठा। भीकू को केशवलाल के साथ देखते ही सुन्दरी सब कुछ ताड़ गयी। वह सोच ही रही थी कि केशव लाल के पूछने पर वह उसे क्या जवाब दे कि केशवलाल ही उसके सामने आकर बोला—"तुम यहाँ कहाँ सुन्दरी? तुम तो महाबलेश्वर जा रही थी न, यही है क्या महाबलेश्वर? हम से झूठ क्यों बोली? सीधा कह देती कि तुम्हे यहाँ आना था तो क्या मैं इन्कार कर देता?" उसकी ओर घूर कर देखता हुआ, छुपी हुई दुष्टता-भरा हास्य चेहरे पर लाकर वह बोला—"अच्छा, तो यह है तुम्हारी बहिन? इससे आगे तुम्हारे ये पोशीदा सफर खत्म हो जायेंगे।"

"केशवलाल जी!"—सुन्दरी गिड़गिड़ाकर बोली। केशवलाल का उद्देश्य उसकी समझ में आ गया था। कुछ भी न बोलकर जब वह जाने लगा, तब सुन्दरी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

पर उसके हाथ को जोर से झिटकार कर केशवलाल चल दिया। गाड़ी में दोनों दो अलग-अलग डिब्बों में बैठे। सुन्दरी की आँखों के सामने चिनगारियाँ छूटने लगी थी। हृदय को निचोड़ कर वह भगवान को गुहार रही थी—"भगवान गणेश! मेरी मता को इस खूँखार भेड़िये से बचाना!"

सफर में यद्यपि दोनों अलग-अलग दो डिब्बों मे बैठे थे, पर दोनों मन में एक दूसरे के बारे मे ही सोच रहे थे । सुन्दरी का मन जितना बेचैन हो उठा था, उतना ही अपने मूल-स्वभाव के अनुसार परिस्थिति का हिम्मत से मुकाबला करने की वह तैयारी कर रही थी ।

केशवलाल अलबत्ता बिल्कुल ही अलग मन.स्थिति मे था । शरणगांव आते समय भीकू ने उसके मन मे जो शक भर दिया था वह अब बिल्कुल दूर हो चुका था । उसके मन मे एक अलग ही भावना पैदा हो गई थी। सुन्दरी उससे प्रतारणा कर रही थी, यह वह अब जान चुका था । परन्तु यह प्रतारणा उसकी एकनिष्ठता के बारे में नहीं थी । अपनी छोटी बहिन को सब की नजरो से ओट कर देने की उसकी हिकमत देखकर केशवलाल भन्ना उठा था ।

वह स्वयं भी इतना एकनिष्ठ कहाँ था ? फिर भी उसे लगता था कि सुन्दरी उससे एकनिष्ठ रहे । व्यभिचारी मनुष्य की वृत्ति ही ऐसी होती है । वह स्वयं भ्रमर-वृत्ति से बर्ताव करता है, परन्तु अपने उपभोग की चीज से अलबत्ता एकनिष्ठा की अपेक्षा करता रहता है । दुर्भाग्य यह कि स्त्रियाँ एकनिष्ठ होती भी हैं । स्त्री-जाति का यह सर्व साधारण गुण ही है ।

केशवलाल को यकीन हो गया कि सुन्दरी उससे एकनिष्ठ है । पादरी को अपनी आँखों देख लेने पर शक के लिए कोई स्थान ही नहीं रहा था और पादरी के घर हमेशा चक्कर काटने का कारण मालूम हो जाने पर तो बचा-खुचा सारा शक रफा-दफा हो गया ।

विलासी जीवन में कामुकता के चरितार्थ के लिए आयु-मर्यादा का बंधन नहीं होता। विलासी जीव हमेशा काल की गति भूल जाया करता है। अपनी जवानी की याद उसे इतनी ज्वलंत होती है कि आयु के अनुसार बदलने वाले मानवी देह के फर्क को भी वह भूल जाता है।

केशवलाल का यही हाल हो गया था। इस समय उसे अपनी जवानी की याद हो आई थी—बल्कि जवानी से लेकर अभी तक जो समय गुजरा उसे वह भूल गया था। बाह्य स्वरूप के दर्शन से वह एकदम गुजरे हुए जमाने में चला गया था। सुन्दरी को जो डर लगा उसका कारण उसके इस समय के उद्‌गार ही थे। उसे पहिले यह भय लग रहा था कि इतने सालों तक उससे छिपकर शरणगाँव आते रहने के कारण केशवलाल उस पर नाराज हो गया होगा, पर वह भय अब नहीं रहा था।

जब गाड़ी बम्बई पहुँची तब केशवलाल कब डिब्बे से उतर कर चल दिया, इसका सुन्दरी को पता भी न चला। भीकू ने भी नित्य की भाँति उसकी प्रतीक्षा नहीं की।

वह घर आई तो उसने सोचा था कि केशवलाल उसकी राह देख रहा होगा, पर उस पूरे दिन केशवलाल उसके घर आया ही नहीं।

इसीलिए वह और अधिक घबरा उठी थी। उसे लगा वह लता को लाने कहीं शरणगाँव तो नहीं चल दिया। उसके मन में यह भी आया कि पुनः शरणगाँव जाकर देखे कि कहीं यही बात तो नहीं है।

इसी समय भीकू आ पहुँचा। यद्यपि यह स्पष्ट था कि उसी ने जाकर केशवलाल से चुगली की थी और वही केशवलाल को लेकर शरणगाँव आया था, पर अपने को इस अभियोग से साफ बचाने के लिए उसने एक दूसरा ही बहाना गढ़ा। वह बोला—"आखिर मैं भी क्या करता? आप ही पहिले से गलती करती आई हैं। क्यों छिपाकर रखी आपने यह बात सेठजी से? और फिर उस समय आपने कहा कि महाबलेश्वर जा रही हूँ और गई शरणगाँव! खैर गई, तो गई—कोई हर्ज नहीं, पर कभी भी वहाँ आप रुकी नहीं थीं। फिर इस बार आप एक रात वहाँ

रुकी क्यों ? खैर, अगर रुकी थी तो कम-से-कम मुझे भी अपने साथ वहीं रख लेना था। मुझे बम्बई क्यों लौटा दिया आपने ? मैं जब लौटकर बम्बई पहुँचा तो सेठजी ने मेरे आने का कारण पूछा और मैं सब बातें सच-सच कह देने के लिए मजबूर हो गया था। सेठजी से झूठ बोलना आप के लिए जितना आसान होता है उतना ही मेरे लिए मुश्किल हो जाता है। उनके डाँटते ही सच बात मेरे मुँह से निकल पड़ी···'

"पर लता के बारे में क्यों कहा तुमने उनसे ?"––सुन्दरी बोली।

"कौन कहता है कि मैंने कहा ?"––भीकू बोला––"लता के बारे में मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। मुझे भी कहाँ यह बात मालूम थी ? सेठजी ने खुद वहाँ लोगों से पूछताछ की और उन्हें सब बातें मालूम हो गयीं। जब उन्होंने लता को देखा तब स्वयं उन्होंने ही यह अनुमान बाँधा कि वह लड़की जरूर तुम्हारी ही कोई होगी। वह दिखती भी तो है बिल्कुल तुम्हारी ही जैसी ''

"बस-बस !" सुन्दरी बोली, "सच तो यही है कि तुमने मुझ से विश्वासघात किया। आज इतने सालों तक मेरा रहस्य गुप्त रखकर ऐन मौके पर तुमने मेरे गले पर छुरी चला दी। जाओ, काला मुँह करो यहाँ से। अब एक शब्द भी मत बोलो।"

अपने को निरपराधित सिद्ध करने के लिए भीकू और भी बहुत सफाई देना चाह रहा था, पर सुन्दरी ने उसे बोलने ही नहीं दिया। जो होना था, हो चुका था। किस के कारण क्या हुआ, यह निश्चित करने में अब कोई मतलब न था।

दूसरे दिन जब केशवलाल आया तो पहिले वह सुन्दरी से बोला ही नहीं, पर सुन्दरी ने अपने बर्ताव में कुछ भी फर्क न दिखने दिया।

यह देखकर कि वह कुछ भी नहीं बोल रहा है सुन्दरी बोली––"कल आप मुझे छोड़कर चले आए ! क्या यह अच्छा किया ?"

"मैं कौन तुम्हारे साथ गया था ?"––केशवलाल बोला।

"यह सच है। पर जब एक बार मेरी आप से मुलाकात हो चुकी

थी तब मुझे छोड़कर भग देने में क्या तुक थी ? क्या था लिखा आपने ?"

"अब मुझे तुम्हारी दरकार नहीं।"

"क्यों ?"

"इसका कारण यह…" केशवलाल बड़ी गम्भीरता से बोला "कि इतने वर्षों से तुम मुझे धोखा देती आ रही हो—मैंने तुम पर पूरा विश्वास रखा और तुमने मुझे धोखा दिया…।"

"बिल्कुल नहीं। सदा मैं तुम्हारे हाथ में हाथ देकर चली रही हूँ।"

"नहीं। यह सत्ता की बात क्यों छिपाकर रखी मुझसे तुमने ?"

"अपने व्यवहार से क्या मतलब था सत्ता का ?"

"अच्छा ! यह बात ! क्या तुम्हें सिर्फ व्यवहार तक ही देखना था ? इसके अलावा हमारा-तुम्हारा क्या दूसरा कोई नाता नहीं था ?"

"यह सच है—परन्तु आपसे और मुझसे वह नाता है। मेरी बहिन से नहीं। वह एक अनाथ लड़की है—बेसहारा है—नादान है। उसे क्यों इस पाप में डुबाती ? मैं तो फँसी ही हूँ इस कीचड़ में…।"

"क्या यह कीचड़ है ? कौनसा कीचड़ ? क्या यह ऐश्वर्य ? यह अमीरी ! तुम्हारी यह शान ! तुम्हारे हर शौक मैं पूरे करता आ रहा हूँ। जो माँगा वह तुम्हें मैं देता आ रहा हूँ, पर तुमने मुझे धोखा दिया। इसका बदला लिए बिना मैं न रहूँगा।"

"मैं आपके पैर पकड़ती हूँ" केशवलाल के चरण पकड़कर सुन्दरी बोली—"उस बेचारी को इस पाप में न घसीटिए सेठजी !"

"मैं चाहे जो करूँ, मुझे रोकने वाली तुम कौन होती हो ?"

"मैं कौन ?"—गुस्सा होकर शेरनी की तरह तड़ाक-से सुन्दरी खड़ी हो गई और बोली—"मैं सुन्दरी हूँ—आपकी सहधर्मिणी चाहे न होऊँ शायद, पर सहचारिणी जरूर हूँ। प्रत्येक काम में मैं आपका साथ देती [illegible]। उन कामों को करते समय मैंने सिर्फ आपके कारण पाप-पुण्य का [illegible] नहीं किया। एक शब्द भी कभी आपके विरोध में नहीं [illegible] पर इस मामले में मैं जरूर आपके आड़े आऊँगी। यही मुझे पाप-

पुण्य का स्मरण होता है। बहन है वह मेरी। मेरे पाप का फल उसे नहीं भोगना चाहिए। वेश्या की लड़की होने के कारण कोई भी उसे पास रखने को तैयार नहीं था। वह बेचारा पादरी—विधर्मी—पर उसने उसे सँभाला। उसे छोटी से बड़ी किया। उसे ठीक राह दिखाई। उसका धर्म-भ्रष्ट करके उसे ईसाई बना लेना उसके बाएँ हाथ का खेल था, परन्तु उसने वह नहीं किया, और आप उसे· "

"मैं उसे यहाँ लाऊँगा।"—केशवलाल निश्चयपूर्वक बोला—"आज तक जिस तरह मैंने तुम्हें अपने सामने झुकाया, उसी तरह उसे भी झुकाऊँगा। मन में आने वह कर गुजरने की मुझ में हिम्मत है। मैं अपने कामों में कभी असफल नहीं हुआ। इसीलिए कहता हूँ कि लता अगर जिंदा रहेगी तो मेरी होकर ही रहेगी।"

"मेरी जिंदगी बरबाद करके क्या आपको सन्तोष नहीं हुआ अभी ?"—सुन्दरी गिड़गिड़ाहट भरे स्वर में बोली।

"तुम्हारी जिन्दगी कैसे बरबाद की मैंने ?"—क्रोध में उबलता हुआ केशवलाल बोला—"तुम्हें आश्रय न देता तो किसी घूरे पर जाकर पड़ी रहती तुम। मैंने तुम्हें अपने यहाँ रखा। तुम ऐश्वर्य में मजे से लोट रही हो और ऊपर से कहती हो कि मैंने जिंदगी बरबाद कर दी तुम्हारी ? क्या बरबादी की है मैंने ? मैं नहीं चाहता कि लता किसी घूरे पर पड़ी-सड़ती रहे, किसी गरीब के घर पत्नी होकर जाने की अपेक्षा मेरे जनान-खाने में ही उसका उद्धार होगा। इसीलिए कहता हूँ कि लता अगर जिंदा रहेगी तो मेरी होकर ही जिंदा रहेगी।"

"हाँ, जानती हूँ।"—सुन्दरी बेफिक्री से बोली।

"क्या जानती हो ?" केशवलाल बोला—"मेरे पैसे पर वह बड़ी है—तुम्हारे पास कहाँ से पैसा आया ? उसे सुधार-पथ पर लाने का अभिमान करती हो ? किसके पैसों के जोर पर वह सुमार्ग पर आई है ? मेरी पूरी मालिकी है उस पर। मैं जैसा चाहूँ उसे काम में लाऊँगा। समझीं ?"

"नहीं-नहीं......" सुन्दरी गिड़गिड़ाकर बोली—"मेरी खातिर—आज तक पूरी ईमानदारी से जिसने आपका साथ दिया, उस सुन्दरी की खातिर ऐसा कोई काम न कीजिए। उसने आपका कोई अपराध नहीं किया है। आपके जीवन मे वह कभी आपके और मेरे बीच में नहीं आई। गरीब बेचारी एक कुमारी—धर्म के मार्ग पर हाल ही में कहीं कदम रखना आरंभ किया है उसने, उसकी जिंदगी बरबाद न कीजिए। अभी तक मैंने उसे अपना परिचय तक नहीं दिया है। इससे आगे भी मैं उसे यह नहीं बताने वाली हूँ कि उसमें मेरा नाता क्या है—उससे बोलूँगी नहीं—उससे मिलूँगी नहीं—उसकी आँख से आँख भी नहीं मिलाऊँगी। इस समय वह धर्म के प्रकाश मे विचरण कर रही है। वहाँ से आप उसे इस पाप की खाई में न लाइए। मैं आपके पैर पड़ती हूँ।" ऐसा कहकर उसने उसके पैर पकड़ लिए और फूट-फूटकर वह रोने लगी। उसे लात से ठुकराकर और एक शब्द भी न बोल केशव वहाँ से एकदम चल दिया।

सुन्दरी उसी तरह बैठी रो रही थी। दुख के भार से उसका कलेजा फटा जा रहा था। आँखों से आँसू बह रहे थे। आँसुओं के जरिए वह अपना दुखावेग कम करने की कोशिश कर रही थी।

कितनी ही देर तक वह उसी तरह विचारों में खोयी बैठी रही। उसे कोई राह नजर नहीं आ रही थी। अपनी एकनिष्ठता पर उसे क्रोध आने लगा। उसे लगा, उस एकनिष्ठता का क्या यही पुरस्कार है? पुरुष मन-माने कुकर्म करते रहें और स्त्री एकनिष्ठ रहे? प्रत्यक्ष अपनी धर्मपत्नी से जो बेईमान हुआ, ऐसे मनुष्य से ईमानदार रहकर क्या मैंने भूल की? और मुझसे भी कहाँ वह ईमानदार रहा? उसने अपनी धर्मपत्नी को जैसा धोखा दिया उसी तरह मुझसे भी प्रतारणा कर वह अपनी विलासी वृत्ति को तुष्ट कर रहा था और अब तो एक कोमल कली को कुचल देने का भयंकर कुविचार उसके मन में जाग उठा है। अब क्यों मैं उससे ईमानदार रहूँ?

वह अपना मन परखकर देखने लगी। उसे लगा मुझमें कहीं कोई

भूल हो गई है। मोहन को देखने के बाद से उसका मन बौखला उठा था—फिर भी उसने मन को लगाम लगा दी थी। एकनिष्ठता की सात्विक भावना मे अपने मन को कब्जे में रखने का प्रयत्न किया था।

एक बार मोहन से उसकी भेंट हुई थी। उस समय वह सकट मे था। उसे उस सकट से उसने मुक्त किया था। उसने अपने मन से प्रश्न किया—जो कुछ मैंने किया क्या वह दया की प्रेरणा से ही किया था ?

· मोहन ने उसे उस समय झिड़कार दिया था। उस झिटकारने का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा था। ऐसा क्यो हुआ ? वह इस प्रश्न का उत्तर नही दे पा रही थी।

उसे लगा, यही है वह प्रतारणा ? मेरी इस प्रतारणा के प्रायश्चित स्वरूप क्या यह मौका मुझ पर आ पडा है ? फिर, क्या केशवलाल को, जो इतने वर्षों से लगातार प्रतारणा करता आ रहा है, इसका प्रायश्चित कभी न मिलेगा ? क्या भगवान ने पुरुषों को खुले आम प्रतारणा करने की छूट दे रखी है ?

धीरे-धीरे उसकी मनःस्थिति बिगडने लगी। उसकी कोमल भावनाएँ विलुप्त हो गयी। हृदय का तूफान बेकाबू हो उठा। इसी समय भीकू आ पहुँचा। उसे देखते ही वह आग-बबूला होकर उस पर बरस पडी—"जाओ यहाँ से। फिर कभी इस घर मे कदम मत रखना।"

भीकू बोला —"मैं तो तुम्हारे भले के लिए ही यहाँ आया हूँ।"

"मेरा भला काफी हो चुका—" सुन्दरी चिढ़कर बोली —"अब विनाश के मार्ग पर कदम रख दिया है मैंने। केशवलाल से आज तक मैं एकनिष्ठा से रही, अब वह मुझसे प्रतारणा कर रहा है ·····"

"और मुझसे भी !" भीकू बोला—"उसने मुझे जो वचन दिया था, वह उसने तोड़ दिया। उसने मुझे रुपये नही दिये। आज मेरे गले में फाँसी लगी है, उसको इसकी कोई परवाह नही। मुझसे अकड़ गया है। अब मैं उसे हरगिज माफ नही करूँगा। उससे बदला लेकर रहूँगा।"

भीकू किस उद्देश्य से यह कह रहा था, सुन्दरी समझ नहीं पा रही

थी। वह क्या सचमुच केशवलाल से लड़कर आया है या केशवलाल के कहने से उस पर नाराज होने का ढोंग कर रहा है, ?

भीकू बोला—"तुम्हें मुझ पर शायद शक हो रहा है ? तुम्हारे ख्याल से यह ठीक भी है, पर मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैं भी नहीं चाहता कि तुम्हारी बहिन, मता का जीवन बरबाद हो। परन्तु मुझ से यह सुन लो कि केशवलाल उस लड़की को माने मोटर लेकर शरणगाँव जा रहा है। खुद अपनी कार में जा रहा है, जिससे उसके जाने का किसी को पता न चल पाये। एक तो मुझे मेरे पैसे नहीं दिये ऊपर से मुझे अपने साथ ले जाने को भी राजी नहीं हुआ। क्या तुम चलती हो मेरे साथ ?"

सुन्दरी कोई निश्चय नहीं कर पा रही थी। अभी भी उसे भीकू पर शक हो रहा था। वह बोली—"अब जो उस लड़की के भाग्य में होगा सो होगा। अगर वेश्या-कुल में जन्म लेने का फल उसे भोगना ही तो उसके लिए मैं भी क्या कर सकती हूँ ?"

"ठीक है।" भीकू बोला—"न चलना चाहती हो तो मत चलो। मैं अवश्य अकेला ही उसका पीछा करूँगा। सिर्फ देखूँगा कि वह करता क्या है ?" जब स्वयं तुम्हे अपनी बहिन की कोई फिक्र नहीं तो इसके लिए मैं भी क्या करूँ ?" ऐसा कहकर वह एकदम चल दिया।

सुन्दरी बेकाबू हो उठी थी। भीकू से बातें करते समय अपने मन पर नियंत्रण रखना उसे बड़ा मुश्किल हो रहा था। भीकू पर उसे विश्वास नहीं था। वह यह जानती थी कि अगर इस समय वह केशवलाल से सचमुच नाराज भी होगया होगा तो रुपये पाते दूसरे ही क्षण वह फिर उस पर खुश हो जायेगा, इसलिए उसने मन में निश्चय किया कि उसे लगा, जितनी ईमानदारी मैंने की वह काफी हो गई। मता को जिन्दा रखना हो तो केशवलाल को मौत के घाट उतारना ही होगा— उसे मौत के घाट उतारने का उपाय एक ही है:...

वह उपाय करने के लिए मन को पक्का करके वह एकदम उठी और घर से बाहर निकल पड़ी।

पुलिस की पकड से सुन्दरी द्वारा छुडाये जाने के बाद से मोहन उसके घर दो-चार बार हो आया था। अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार वह उससे जितना संभव था उतना दूर रहा था। वह उसके घर गया, बैठा बातें की, पर उसने उसे स्पर्श नही किया। वह जब उसके शरीर से सटने की कोशिश करती तो वह अंग बचाकर दूर हो जाता।

वह यद्यपि उससे इतना दूर रहता था फिर भी वह उसके घर जाता तो हजार-पाच सौ के नोट उसके सामने फेंक आता था।

सुन्दरी को उन रुपयों की जरूरत न थी, इसके बावजूद उसने इन रुपयों को लौटाने की हिम्मत कभी नहीं की। रुपये लौटाने से मोहन को बुरा लगेगा ऐसा उसका ख्याल था। उसे यह भी भय था कि अगर रुपये लौटाऊँगी तो वह फिर कभी आएगा भी नही, इसलिए मोहन द्वारा उसे दिये रुपये उसने कभी लौटाए नहीं। समय-समय पर उसके द्वारा दिये गये नोटों के बन्डलों को उसने सुरक्षित स्थान मे रख दिया था। यह सोच कर कभी-न-कभी वह मेरे मन को जानेगा, वह मेरा अपना हो जायेगा और उस समय मैं ये सब रुपये उसे लौटा दूँगी, वह चुप थी।

मोहन उसके पास बिल्कुल ही अलग उद्देश्य से जाता था। वह उसके उपकारों को भूला नही था। वह कितना भी क्रूर हो पर कृतघ्न नहीं था पर केवल इतने के लिए ही वह उसके घर नहीं जाता था। उसे मालूम था कि सुन्दरी केशवलाल की रखैल थी। केशवलाल के [illegible]

कारनामों के जाल में उसी के घर घुसे जाते थे। उसका एकाध धागा कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं से पकड़ लेने की आशा से वह उसके घर जाता था।

सुन्दरी अलबत्ता गलत समझ रही थी। उसे लगता था कि उसके हृदय के किसी कोने में जरूर मेरे प्रति थोड़ा-सा स्नेह है और इसलिए वह आता है, पर यह सुन्दरी का मतिभ्रम था। उन दोनों की उम्र में बहुत अन्तर था। सुन्दरी मोहन से बहुत वर्षों से बड़ी थी, पर वह उन अनेक स्त्रियों में से एक ही थी जो हमेशा तरुणी बनी रहती है। कितने ही वर्षों में काल की पगडंडी ने उसकी देह पर तनिक भी परिणाम नहीं किया था। कितने ही वर्षों तक वह अपनी एक ही उम्र बताती थी और उतनी ही तरुणी दिखती भी थी कि सुनने वालों को वह उम्र जँच जाती थी, इसीलिए उसे लगता कि मोहन आज नहीं तो कल उसके अनुकूल हो जायगा।

केशवलाल का और सुन्दरी का नाता केवल दूकानदार का था। चूँकि केशवलाल ने ही प्रथम उसका कौमार्य भंग किया, इसीलिए कुलीन स्त्री की तरह वह उससे एक-निष्ठ रहती थी। बस इतनी ही बात थी। स्त्री के जीवन में किसी भी पुरुष के प्रति जो एक विशेष प्रकार की कोमल भावना उत्पन्न होती है, वह भावना उसके मन में प्रथम बार ही मोहन को देखने से हुई। आज नहीं तो कल अंकुर की बाढ़ होगी, इस अपेक्षा से वह प्रतीक्षा कर रही थी।

केशवलाल उसके साथ हमेशा ऐसा बर्ताव करता था जैसे वह उसकी पालतू कुतिया हो, पर उसने उसकी कभी कोई शिकायत नहीं की। उसे लगता, विवाहित पत्नी के साथ भी पुरुष इससे अलग बर्ताव कहाँ करते हैं? केशवलाल की धर्मपत्नी की परिस्थिति को वह देख रही थी—उसी तरह की अपनी भी समझती थी, पर आज उसे उसके झिड़कारने पर क्रोध हो आया था।

सिर्फ झिड़कार देने के कारण ही उसे केशवलाल पर यह गुस्सा नहीं आया था। उसकी मासूम और अनाथ बहिन पर टूट पड़ने की जो क्रूर

पशुवृत्ति उसने दिखाई, इस कारण ही वह बिगड उठी थी और इसीलिए वह अपने घर से निकल कर सीधी मोहन के घर आई थी।

संयोग से मोहन उस समय घर मे था। नौकर के द्वारा खबर पाते ही कि कोई औरत उससे मिलने आई है, वह क्षण-भर के लिए सोच मे पड गया। पहिले की तरह केशवलाल का कहीं यह कोई दूसरा षडयंत्र तो नहीं है, ऐसी शंका उसके मन को छू गयी। दरवाजे की संद से उसने धीरे-से बाहर देखा और सुन्दरी को आया देख वह आश्चर्य-चकित हो गया। क्षण-भर के लिए सकते में आ गया—स्तंभित हो गया। पुन उसे शक हुआ। कहीं यह भी केशवलाल का ही षडयंत्र न हो?

पहिली स्मृति जाग उठी। मरणासन्न स्थिति मे सुन्दरी ने उसे बचाया था दूसरी घटना याद हो आई, एक तरुणी को उसने गुंडों से बचाया था। वह भी केशवलाल की पिट्ठू थी। उसने भी अपने घर बुला कर उसे धोखा देने की कोशिश की थी। यह भी कहीं उसी तरह का तो कोई षडयंत्र न होगा?

पर वह डरपोक नहीं था। जानबूझकर सकट मे कूदकर उसमे से सही-सलामत बाहर निकलने की हिम्मत उसमे थी। इसीलिए उसने सुन्दरी को भीतर आने दिया। उसके कमरे मे कदम रखते ही उसने पूछा—"सुन्दरी, तुम यहाँ क्यों आई?"

"क्यों आई?" सुन्दरी निर्भयता से बोली—"क्यों इतने निठुर हो गए हो तुम? क्यो मेरे घर नहीं आते आजकल?"

"मैं जीना चाहता हूँ!" मोहन हँसते हुए बोला।

"जीना चाहते हो?" सुन्दरी ने उसकी आँखों मे आँखें डालकर उसके सामने आते हुए पूछा—"कौन कहता है कि तुम मत जियो?" कौन है तुम्हारी जान का भूखा?"

पुनः हँसकर मोहन बोला—"यह तो तुम भी जानती हो और मैं भी जानता हूँ। पूछने का ढोंग क्यों कर रही हो? क्या एक बार मैंने तुमसे यह नहीं कहा था कि किस तरह एक स्त्री को अपने विश्वास मे लेकर

केशवलाल ने मेरा जीवन समाप्त करने की कोशिश की थी ? फिर क्यों पूछने का ढोंग करती हो ? स्त्री-जाति ने क्या कभी भी किसी का कल्याण किया है ? इसलिए कहता हूँ, यहाँ से फौरन चली जाओ, फिर कभी यहाँ कदम न रखना । समझी ?"

"क्यों ?"

"इसलिए कि मैं कहता हूँ !"

"तुम ऐसा क्यों कहते हो ?"

"स्त्री-जाति पर मेरा विश्वास नहीं । स्त्रियों के प्रति मुझे कोई आकर्षण नहीं । चाहो तो मुझे नामर्द कह सकती हो, पर यह सच है कि स्त्री को देखकर मेरा मन कभी चंचल नहीं होता—कभी नहीं पिघलता । अपनी भावनाओं को मैंने सीमित कर लिया है । मैं अन्य पुरुषों की तरह नहीं—मैं साधारण पुरुष नहीं । केशवलाल के गज से मुझे मत नापो । तुम्हारे जाल में मैं कभी नहीं फसूँगा ।"

सुन्दरी क्षण-भर के लिए स्तब्ध रही । झपट्टा मारने के लिए शेरनी जिस तरह अपने शिकार को देखती है उसी निगाह से मोहन की ओर देखती हुई वह बोली—"आज मैं तुम्हें अपना हृदय खोलकर दिखाने वाली हूँ जिन्दगी में आज तक मेरा दिल कहीं नहीं उलझा था । पर जुए के अड्डे में जब मैंने तुम्हें तुम्हारे पिता के साथ पहली बार देखा..."

दो प्रकार की यादें उन दोनों के हृदय में इस समय जाग उठी थीं । पिता की मृत्यु के बाद उसकी याद किसी पराये व्यक्ति ने प्रथम बार ही इस प्रकार की थी । इसलिए पुन सारी स्मृतियाँ जाग उठीं । उसकी सिर्फ याद से ही वह होंठ चबाने लगा । सुन्दरी ने उसका वह रौद्र-रूप देखा और उसके रोंगटे खड़े हो गए । उसी कंपित मन स्थिति में वह बोली—"अपनी दुर्बलता स्वीकार करने मैं आई हूँ । तुम्हारे चरणों की दासी होने मैं आई हूँ । केशवलाल का मेरा नाता तुम जानते हो । वैसा नाता मैं तुम से नहीं चाहती । इस दुनिया में मैं अकेली हूँ—इन सब लोगों के बीच रहते हुए भी मैं अकेली हूँ । किसी के सहारे की मुझे जरूरत है ।

मुझे ऐसे व्यक्ति का सहारा चाहिए जिसे मैं आत्मीयता से अपना कह सकूं। मैं प्रेम का सहारा नही माँगती—प्रेम का सहारा नही कहती। उस पवित्र शब्द का मुँह से उच्चारण करने की योग्यता मुझमें नही। अपने चरणो की मुझे दासी बनाना यदि तुम मञ्जूर कर लो······"

"किस के पैरों की दासी होना चाहती हो तुम ?"

"तुम्हारे !" कहते हुए सुन्दरी गद्गद् हो उठी।

"वाह !" मोहन बोला—"अच्छी अभिनेत्री हो। अभिनय बड़ा अच्छा करती हो तुम ! चरणो की दासी ! आः !"

"प्रियतम !" सुन्दरी मुँह मे ही बुदबुदायी।

"क्या खूब !" पुनः तिरस्कार से हँसकर मोहन बोला—"वाह ! तुम चरणों की दासी होगी और प्रियतमा भी होगी—पर किस की ?"

नजदीक की मेज की दराज खोलकर मोहन ने उसमें नोटों के कुछ बंडल निकाले और उन्हे सुन्दरी को दिखाता हुआ बोला—"इनकी ? इन पैसों की दासी ? इन पैसो की प्रियतमा ? सुनो सुन्दरी, मैं साहसी हूँ, पर मूर्ख नहीं। तुम्हारी जाति को मैं खूब पहचानता हूँ। प्रियतम, प्रभु, परमेश्वर कहकर तुम पुरुषो को नचाती रहती हो। क्यों, जानती हो ?" उत्तर के लिए एक-दो क्षण के लिए रुका, पर यह देखकर कि सुन्दरी चुप है, वह बोला—"पेट के लिए—अपना पेट जलाने के लिए—इन पैसों की कीचड़ को अपने पैरो से रौंदने के लिए।" नोटों के बंडल पुनः उसे दिखाता हुआ वह बोला—"यही है न तुम्हारा वह प्रियतम ? तुम्हारा प्रभु ? तुम्हारा परमेश्वर ? यह लो अपना परमेश्वर और मुँह काला करो यहाँ से।" ऐसा कहकर उसने वह बंडल उसके मुह पर फेंक दिये। नोट सारे कमरे मे बिखर गए।

शांति से हँसती हुई सुन्दरी बोली—"इतने नोट मैं भी इसी तरह कौड़ियों से फेंक सकती हूँ। तुम जब मेरे घर आते थे और मुझे हजारो के नोट दे जाते थे तो मैं उन्हे ले लेती थी। इसीलिए तुमने शायद सोचा कि मैं रुपयो की भूखी हूँ, पर अभी मेरे साथ घर चलो और मैं तुम्हे

'दिखाये देती हूँ कि तुम्हारे वे सारे बंडल मेरे पास ज्यों-के-त्यों अलग रखे हुए हैं। उनका फीता भी नहीं खोला है। पैसों पर मरने वालियाँ कोई दूसरी होंगी। मैं उनमें से नहीं। पैसों की भूख शान्त करने के लिए मैं यहाँ नहीं आई—प्रेम की भूख शान्त करने लिए मैं यहाँ नहीं आई। उस भूख की खाई में यदि मैं सड़ती रहती—तो 'प्रेम' शब्द मुँह से भी न निकालती। पर आज मैं तुम्हारे काम के लिए आई हूँ। तुम्हें भी एक भूख है……"

"मुझे ! मुझे काहे की भूख है ?"

"बदला लेने की भूख—बल्कि बदला लेने की आग !"

"काहे का बदला ?"

सुन्दरी पुनः हँसकर बोली—"वह तुम भी जानते हो और मैं भी जानती हूँ।"

"क्या जानती हो तुम ?" एकदम खड़ा होकर उसका हाथ पकड़ता हुआ मोहन बोला।

"औरतों की नजर बड़ी तीखी होती है, मोहन बाबू !" सुन्दरी शांति से बोली—"जब वे मर्द की आँखों में आँखें डालती हैं तो उन्हें उसके हृदय की तली का कीचड़ भी दिख जाता है। तुम्हारे हृदय का वह कीचड़ मैंने देख लिया है। कीचड़ नहीं—ज्वाला, धधकती आग—बदले की आग।"

"आग !……साफ-साफ बताओ।" व्याकुल होकर मोहन ने कहा—"क्या जानती हो तुम ?"

शांति से बोलते समय सुन्दरी मन पर पूरा अधिकार रखने का प्रयत्न कर रही थी। एक क्षण के लिए रुककर वह बोली—"तुम्हारा बाप मर्दों में मर्द था। यदि कोई उससे विश्वसघात न करता तो आज वह सूर्य की तरह चमकता रहता………"

"रुक क्यों गई ? आगे बोलो।"

"किसने उससे विश्वसघात किया ?" मोहन की आँखों में आँखें

डालकर सुन्दरी ने पूछा—"किसने पकड़वा दिया था उसे ?"

"किसने ?" क्रोध से थरथर काँपते हुए मोहन ने पूछा।

"कौन था वह जिसने तुम्हारे बाप को दगा देकर पकड़वा दिया और तुम्हारे बाप का खून······हाँ, खून ही नहीं तो और क्या था वह ? तुम्हारे बाप का खून कराया—किसने यह खून कराया ?"

"हाँ-हाँ-हाँ !" दाँत पीसता हुआ बेकाबू होकर मोहन जोर से चिल्ला पड़ा—"हाँ-हाँ बताओ, किसने खून कराया मेरे पिता का ?"

"केशवलाल ने !" थूक गिटकती हुई सुन्दरी बोली—"तुम्हारे दुश्मन ने—मेरे मालिक ने······"

मोहन जोर से हँसने लगा। उसकी हँसी बेकाबू हो गयी थी। वह देखकर कि वह ठहाका के बाद ठहाका लगाकर हँस रहा है, सुन्दरी स्तंभित हो गयी।

हँसी को रोकता हुआ मोहन बोला—"अच्छा ! तो उस काँटे को इस तरह निकालकर फेंक देना चाहती हो तुम ? क्यों ? शायद तुम यह सोच रही हो कि यदि मैं केशवलाल की जान लूँ तो तुम फिर मेरे गले पड़ जाओगी और फिर किसी समय मेरी जान ले लोगी। जाओ, बेवकूफ हो तुम······"

"नहीं मोहन बाबू !" सुन्दरी बोली—"मैं सच कह रही हूँ। यह रहस्य बाहर निकलने के लिए मेरे हृदय में छटपटा रहा था, पर भय से मैंने मुँह नहीं खोला था—पर अब···" इतना कहकर वह रुक गई।

"अब ऐसी कौन सी खास बात हो गई ?" मोहन ने पूछा।

"अब क्या हुआ वह भी बताती हूँ, सुनो।" ऐसा कहकर सुन्दरी ने गुजरा हुआ सारा हाल मोहन को कह सुनाया। उस हाल के समाप्त होते ही वह बोली—"अब मुझसे बरदाश्त नहीं हो रहा है। मैं बेकाबू हो उठी हूँ। मैं भी बदला लेना चाहती हूँ। बदले की मिठास क्या है, इसकी कल्पना मुझे आज हुई। इसीलिए मैं तुम्हारे पास आई हूँ। अब यह बताती हूँ कि उस समय क्या हुआ था ? रामनाथ को तुम्हारे घर

केशवलाल ने ही भेजा था। भीकू रामलाल के साथ तुम्हारे घर तक गया था। वह बाहर खड़ा था। जब तुम्हारे पिता ने रामलाल की मदद करना स्वीकार कर लिया तब भीकू ने केशवलाल को टेलीफोन किया और केशवलाल ने टेलीफोन से तुरन्त ही पुलिस को सूचना दे दी। वह सूचना मैंने अपने कानों सुनी थी, क्योंकि उस समय मैं केशवलाल के पास ही थी। अब जँची बात ? इस तरह तुम्हारे पिता का खून हुआ और अब केशवलाल शरणगाँव गया है—मेरी बहिन की अस्मत लूटने—तुम्हारी माँ को तंग करने। उसने प्रतिज्ञा की है कि नामो-निशान भी नहीं रहने दूँगा इस दुनिया में और इसीलिए अपनी कार से वह सीधा शरणगाँव रवाना हो गया है······"

"कब ?"

"अभी कोई पन्द्रह-बीस मिनट पहिले। मैं यहाँ आई उसी समय !"

एक शब्द भी न बोल कपड़े पहिनकर मोहन निकल पड़ा। जाते समय दराज से पिस्तौल निकालकर उसे अपने जेब में रख ली।

सुन्दरी वहीं खड़ी थी। उसकी खुशी का पारावार न था। उसे यकीन हो गया था कि उसकी बहिन अब बच जायगी। वह मन में कह रही थी—केशवलाल मरे या जिये मुझे इसकी परवाह नहीं। यदि मेरी मना सुरक्षित रह जाय तो मेरा काम हो गया, ऐसा मैं समझूँगी।

वह अब जाने लगी तो कमरे में बिखरे हुए नोटों की ओर उसकी निगाह पड़ी। एक क्षण के लिए उसे लगा कि उन नोटों को ज्यों-का-त्यों छोड़कर चल दे। इसी समय उसे पादरी को दिये गये अपने वचन की याद हो आई। उसे लगा, भाई के पैसे भाई के काम आएँगे। इन्हें उठाकर रख लेना चाहिए। यह सोचकर उसने उन नोटों को समेट लिया। मोहन द्वारा उसे अब तक दिये गये सारे रुपये और इस समय उसने जो समेटे थे वे रुपये—यह सारी रकम कुमार की आगामी शिक्षा के लिए पादरी को जाकर देने की मन-ही-मन निश्चय कर, वह उस दुनिया से बाहर निकल पड़ा।

जलसे से आशातीत आमदनी हुई। दुर्गाबाई द्वारा एकत्रित चन्दे की रकम भी काफी बड़ी थी। प्रसूतिगृह की थोड़ी-बहुत कमी दूर हो गई थी। यह देख पादरी की तरह दुर्गाबाई को भी सन्तोष हुआ।

उस जलसे के कारण एक बड़ा फायदा हुआ। आज तक आस-पास के गाँव के लोग जो दुर्गाबाई के कार्य से दूर रहते थे उनका भी ध्यान उस कार्य की ओर आकृष्ट हो गया। उस आश्रम में लोगों की भीड़ होने लगी। पर्याप्त चरखों और करघों का इन्तजाम करना मुश्किल हो गया था। करघे प्राप्त हो जाने पर उन पर काम कर सकने वाले लोगों को जुटाना भी जरूरी हो गया था। पुराने लोग गाँव छोड़कर चले गए थे। किसी समय वह जुलाहों का ही गाँव था। परन्तु उस गाँव के बहुत से जुलाहे बम्बई की मिलों में मजदूरी कर रहे थे। उन्हें फिर गाँव वापिस लाने के प्रयत्न किए गए, पर वे सफल न हुए। एक बार बम्बई का स्वाद चख लेने पर पुनः गाँव में आने को कोई तैयार न था।

गाँव में आकर उन्हें जो मजदूरी मिलती, उससे गाँव में वे अपनी उपजीविका बड़े आराम से चला सकते थे, परन्तु मजदूरी का अंक दिखने में छोटा था। इसके विपरीत बम्बई में मिलने वाली मजदूरी यदि बम्बई में उपजीविका चलाने के लिए उन्हें पर्याप्त नहीं होती थी, पर उस मजदूरी का अंक बड़ा होने के कारण वे उस मोह-जाल में फँसे हुए थे। इसलिए गाँव में करघे चलाने वाले लोगों को नये सिरे से तैयार करना पड़ा। नये आदमी तैयार होने के लिए अवधि लग रही थी। तब

तक तैयार हुए सूत को बाहर भेजकर वहाँ से उसके कपड़े तैयार करके लाये जाते थे।

दुर्गाबाई का उसूल था कि अपने गाँव में तैयार हुए सूत का कपड़ा अपने ही गाँव के लोगों के काम आना चाहिए। अपने गाँव की बनी खादी दूसरे गाँव में बेचें और दूसरे गाँव के कपड़े खरीदने में गाँव वाले अपनी गाढ़ी कमाई खर्च करें, यह दुर्गाबाई को पसन्द न था।

मोटा कपड़ा पहिनने के लिए गाँव के लोग पहले तैयार ही नहीं होते थे, परन्तु आगे चलकर धीरे-धीरे वे उसके अभ्यस्त हो गए। स्त्रियों ने भी रंग-बिरंगी छींट की साड़ियों का शौक छोड़ दिया और अपने आप ही, गाँव के सूत को गाँव में ही बनी खादी की साड़ियाँ वे पहनने लगीं। इस तरह कम-से-कम वस्त्र के बारे में शरणगाँव परमुखापेक्षी नहीं रहा।

दुर्गाबाई के कार्य का महत्त्व सबको जँचने लगा था। छोटे परिमाण पर शुरू किये गये अचार और पापड़ के कारखाने भी जोरों से चल रहे थे। गरीब ग्रामवासियों का हर घर एक छोटा-सा कारखाना ही हो गया था। इन कारखानों का विस्तार बढ़ाने के लिए पादरी जलसे की आमदनी का कुछ भाग दुर्गाबाई को देना चाहता था, पर दुर्गाबाई ने उसे लेना सधन्यवाद अस्वीकार कर दिया। उसका मत था कि जिस काम के लिए जो पैसा एकत्रित किया गया है वह उसी काम में खर्च होना चाहिए। कुछ लोगों को दुर्गाबाई की यह राय अच्छी नहीं लगी। परन्तु उसने उन विरोधियों को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। उसका कहना था कि अभी तक जो अनुभव प्राप्त किया उसके जोर पर ही हमें स्वावलम्बी होने का सफल प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह अपने व्यक्तित्व से उसने विरोधियों के मन अपनी ओर मोड़ लिये।

कुमार शरणगाँव में रहकर माँ के काम में हाथ बँटा रहा था, पर उसका मन विलायत में लगा हुआ था। प्रतिकूल परिस्थिति में उसने विद्याध्ययन किया था। उसने सोचा था कि शिक्षा-क्रम के अन्त में वह प्रतिकूल परिस्थिति समाप्त हो जायगी, पर ऐसा न हुआ। इसलिए अब

उसे युद्ध-न-युद्ध किये बिना चारा नहीं था और क्या करे यह उसे सूझ नहीं पा रहा था। अपने आगामी मार्ग को निश्चित करने के लिए दुर्गा-बाई ने अपनी तरफ से उस पर कोई बन्धन नहीं डाला था।—परन्तु यही बात उसके लिए बड़ी कठिन हो बैठी थी। उसकी आज तक यह आदत होने के कारण कि माँ आज्ञा दे और वह चुपचाप उसका पालन करे, अपने आगामी मार्ग को स्वयं निश्चित करना उसके लिए एक बड़ी समस्या हो बैठी थी।

बेचारी लता भी आखिर क्या सलाह देती? सभी तरह से वह पंगु थी। वह अब अपना भला-बुरा पहचानने लगी थी। वह कौन है, उसके माता-पिता कौन हैं, उसका खानदान क्या है, जाति क्या है, यह सब जानने की उसकी जिज्ञासा पद-पद पर बेकाबू हो रही थी। इसके बावजूद अदृश्य भूतकाल में टटोलने के बदले उसे भी भविष्य-काल की चिन्ता सता रही थी। कुमार के भवितव्य पर उसका भवितव्य अव-लम्बित था।

एक प्रकार से उन दोनो का विवाह निश्चित-सा हो गया था। अपने पैरों पर खड़े होने की ताकत आए बिना वह गृहस्थी में नहीं पड़ेगा, यह कुमार का दृढ़ निश्चय था। इसीलिए लता के प्रश्नों का उत्तर देना उसे कठिन लगा। वह बोला—"करूँ क्या? मन में बहुत-सी बातें आती हैं। कितनी ही योजनाएँ मैंने बना रखी हैं। कितने ही स्वप्न मैंने संजो-कर रखे हैं। पर वे सब कल्पना के खेल हैं। उन सब खेलों को प्रत्यक्ष रूप में कैसे लाया जाय, यही मैं निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ।"

लता बोली—"फिर क्या करोगे अब? क्या इसी तरह शरणगाँव में अन्य चार लोगों की तरह यांत्रिक जीवन बिताते रहोगे?"

"दुनिया के साधारण लोग जो कर रहे हैं वही मुझे भी करना होगा। इसके सिवा दूसरा उपाय ही नहीं। रास्ता एक ही नजर आ रहा है। कहीं नौकरी कर लूँ।"

"नौकरी? पर इस गाँव में नौकरी कहाँ मिलेगी?"

"यहाँ नही। तो और कहीं जाकर। कही भी—जहाँ पेट भर अन्न मिले और माँ को कष्ट नही करने पड़े, इतनी सुविधा प्राप्त हो जाय वहाँ। नहीं तो आखिरी सहारा बम्बई है ही।"

"बम्बई !" लता घबराकर बोली—"क्या तुम बम्बई जाओगे ?"

"क्यों ? क्या मुझे बम्बई नहीं जाना चाहिए ?" कुमार हँसकर बोला—"फिर कहाँ जाना चाहिए ? दूसरा सहारा कहाँ ? इतनी-सी बात तुम्हारी समझ मे कैसे नही आती लता ? अब मैं कमाने लायक जो हो गया हूँ। अब और कितने दिन माँ पर अपना बोझ डालूँ ? मेरे जन्म से लेकर आज तक उसने संकट मे दिन बिताये हैं। परिस्थिति से वह झगडी। संघर्षों के बीच ही उसने गाँव में अपनी और अपने गाँववालों की उपजीविका चलाने के साधन निर्मित किये। मुझे बी० ए० तक पढ़ाया। तुम्हे भी पढ़ाया। अब उसे और कितने दिनों तक कष्टों के बीच पड़ी रहने दें। वह क्यों मेरा बोझ उठाये अब ?"

यह देखकर लता की आँखे डबडबा उठी हैं, वह बोला—"आशा बड़ी बुरी होती है लता ! आगामी आशा पर आज के कष्टों को सहन कर लेना सरल होता है यह सच है, परन्तु निराश होते ही मनुष्य की एकदम हिम्मत टूट जाती है। इसलिए आशा-निराशा के मोह-जाल में हमें बिल्कुल नहीं पड़ना चाहिए। जितना सम्भव हो उतना काम करते रहना चाहिए। आगे जो होना होगा, सो होगा। आज तक माँ ने क्या यही उपदेश नहीं दिया हमें ? उसे तुम कैसे भूल रही हो ? विलायत जाने का विचार छोड़ दिये बिना अब कोई चारा नहीं। हो चुकी—मेरी शिक्षा अब यहीं खत्म हो चुकी—"

"नहीं।"—दुर्गाबाई की आश्वासनात्मक वाणी उन दोनों के कानों में पड़ी। इस एक शब्द से उन दोनों की ही मुद्राएँ बदल गयीं।

"क्या कह रही हो माँ ?" कुमार बोला—"क्या अब भी आशा है ?"

"अरे सिर्फ आशा नहीं—"दुर्गाबाई ने कहा—"सिर्फ आशा नहीं, बल्कि पूरा विश्वास है। आगामी सप्ताह के जहाज से ही तुम विलायत

जाओगे। सुना? तुम जाओगे। यह इतना ही सच है जितना यह सच है कि सूरज पूर्व में निकलता है। जाओ तैयारी में जुट जाओ। तुम्हारी आगामी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध हो चुका है अब।"

दोनों ही स्तम्भित हो गए। यह चमत्कार कैसे हो गया, इसकी उन्हें कोई कल्पना नहीं हो पा रही थी। विलायत जाना कोई मामूली खर्च का काम नहीं था। इतनी बड़ी रकम उन्हें कौन देगा?

"किसने किया है यह प्रबन्ध?"—कुमार ने पूछा।

"पादरी बाबा ने।"—दुर्गाबाई बोली—"एक दाता मिल गया। पचास हजार रुपये का इन्तजाम हो गया है। आज तुम्हें यह रकम कर्ज के रूप में मिलेगी। विलायत से बैरिस्टर होकर आने के बाद जब कमाने लगोगे तब यह रकम छोटी-छोटी किश्तों में लौटा देनी होगी। ऐसा तय हुआ है। रकम बाबा जी के पास पहुँच भी चुकी है।"

दोनों की ही आँखों से आँसू बहने लगे। निराशा के अनिश्चित तूफान में उनकी नैया किनारे लग जाने के कारण उन्हें जो आनन्द हुआ, वह अवर्णनीय था।

कितनी ही देर तक कुमार के मुँह से शब्द ही बाहर नहीं निकल रहा था। वह दुर्गाबाई के मुँह की ओर सिर्फ देख रहा था। दुर्गाबाई हँसकर बोली—"क्या तुम्हें यह सच नहीं लगता कुमार? 'अमृतराय' ने क्या कहा है, जानते हो न? जो निश्चय करके बैठ जाता है उसे भगवान घर पर लाकर देता है। अब तुम्हें अमृतराय की वाणी जँच गयी न?"

यह देखकर कि अब भी कुमार स्तब्ध ही हैं, लता बोली—"कितने दिन रहेंगे विलायत में कुमार?"

"तीन साल।"—दुर्गाबाई ने उत्तर दिया।

लता स्तम्भित हो गयी। कुमार कालेज शिक्षा के लिए बम्बई में रहता था। वह वियोग भी लता को असह्य हो उठता था, पर उस समय यह आशा रहती थी कि छुट्टियों में कम-से-कम वह कुछ दिनों के

लिए गाव आयेगा और उससे मुलाकात होगी। इस प्रकार उसे साल मे दो-चार बार कुमार से मिलने की आशा रहती थी, परन्तु अब विलायत जाने पर तीन वर्ष तक उससे भेंट न हो पायेगी। तीन साल का लम्बा वियोग रहेगा। सिर्फ पत्रों का ही आदान-प्रदान हो सकेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं। इस विचार से उसका हृदय भर उठा।

वह अनाथ थी। सनाथ होने की आशा हृदय में दबाये थी, परन्तु यह देखकर कि उसके सनाथ होने का समय और तीन वर्ष के लिए स्थगित होगा, उसका मन बोझिल हो उठा। इस क्षण तक उसे लग रहा था कि कुमार जरूर विलायत जाय, उसके हृदय में निराशा की जो काली घटा छा गयी है वह एकदम दूर हो जाय और आशा की किरण प्रस्फुटित हो उठे, परन्तु प्रत्यक्ष रूप में कुमार के स्वप्न को साकार हुआ देखकर आनन्द के साथ ही उसके हृदय में विरह-दुःख भी उमड़ उठा।

"तीन साल !"—वह बोली।

"कितना कम समय है यह ?" दुर्गाबाई ने कहा—"तुम यह कल्पना कर सकती हो कि कुमार के जन्म से लेकर आज तक का समय मैंने किस तरह विताया है ? परन्तु अपनी कल्पना और मेरे हृदय की यातना इन दोनों का मेल तुम नहीं जमा सकोगी। अभी भी मुझे तीन साल और गुजारने हैं। आज तक सहवास में रहते हुए विरह अनुभव करने का समय था—अब प्रत्यक्ष रूप में विरह होगा। माँ के हृदय की तुम्हें कोई कल्पना नहीं लता···" एक क्षण के लिए रुककर मन में उठे आवेग को रोकती हुई वह बोली—"भविष्य की ओर नजर रखकर यह विरह सहन करना चाहिए। तीन वर्ष ! अनन्त काल में तीन वर्ष समुद्र में एक बूँद के समान है। वह विलायत जा सका, यही क्या कुछ कम है ? असंभव लगने वाली बात संभव हो गई, यह क्या कम हुआ ? जब असंभव संभव हो गया तब आगामी सुख की आशा पर तीन वर्ष बिता

देना तुम्हें क्यों कठिन होना चाहिए लता ? मेरी ओर देखो—बीते दिनों की याद और आने वाले सुख की कल्पना के बीच ये तीन वर्ष स्वप्न के समान बीत जाएंगे। अध्ययन समाप्त करके ज्यों ही कुमार लौटकर आएगा कि फिर···" दुर्गाबाई ने उसकी चिबुक पकड़कर उसका एक चुम्बन लिया।

आँसुओं की वर्षा में तृप्ति के संयोग से उत्पन्न होने वाली प्रकाश की छटा लता के चेहरे पर चमक उठी।

पादरी बाबा के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए लता और कुमार दोनों मिशन-हाउस जाने लगे।

उन दोनों के साथ दुर्गाबाई भी मिशन-हाउस तक गयी। बेचारा पादरी बेचैन हो उठा था। जिसके प्रति कृतज्ञता वास्तव में प्रकट करनी चाहिए थी उसके नाम का केवल उल्लेख करना भी असंभव होने के कारण उसे दुख हो रहा था कि उसे अकारण ही उसका श्रेय मिल रहा है।

वैसे दुर्गाबाई को व्यर्थ की पूछताछ करना पसंद नहीं था, यह सच है। फिर भी अपनी नित्य की वृत्ति के अनुसार उसे जितनी तीव्रता से यह पूछना था कि यह पैसा कहाँ से आया, उतनी तीव्रता से उसने इस समय पूछताछ नहीं की। उसे विश्वास था कि पादरी उसकी वृत्ति को अच्छी तरह जानता है और वह ऐसा कोई काम नहीं करेगा जिससे उसके हृदय को चोट पहुँचे। उसे यह भी यकीन था कि यदि पैसा पाप से सना हुआ होता तो उसे मेरे लिए वह कभी स्वीकार न करता। इसी-लिए उसने अधिक पूछताछ करना टाल दिया। पादरी बोला—"मुझे अत्यन्त खेद है कि उस धर्मात्मा का नाम मैं नहीं बता सकता। पर यह दान नहीं ऋण है। कल तुम्हें यह ऋण अदा कर देना है। ऋण लेने के लिए हमें कुछ रेहन रखना पड़ता है। हमसे यह रेहन नहीं मांगा गया, इतना ही इसमें उपकार का अंश है।"

इससे दुर्गाबाई का समाधान हो गया और वह घर चल दी। घर

कोठी तो उसने देखा कि उसके दरवाजे एक मोटर खड़ी हुई है। वह चकित हो गई। मोटर बहुत बड़ी थी और वह काफी कीमती भी होगी, ऐसा उसे लगा। यह देखने के लिए कि ऐसा कौन धनी व्यक्ति उसके घर आया है उसने भीतर झांका। दरवाजे की ओर पीठ करके एक व्यक्ति चौकी पर बैठा कुछ गा रहा है, ऐसा उसे दिखाई दिया। उसकी पोशाक अंग्रेजी ढंग की थी। भीतर आने पर उसने अपने बूट भी नहीं उतारे थे इससे उसने सोचा कि इस घर के अनुशासन से वह पूर्णतया अपरिचित होगा। उसे आश्चर्य हुआ था कि इतना अपरिचित व्यक्ति उनके घर में आए और इतने इतमीनान से गा न रहे! यह क्या मामला है ?

दुर्गाबाई की आहट मिलते ही उस मेहमान ने पीछे मुड़ कर देखा उसे देखते ही वह एकदम चौंक उठी। कितनी समानता थी उसके चेहरे में! क्षण-भर के लिए उसे लगा जैसा शंकर पुनः लौट आया है।

वह चट से उठकर बोला—"क्या मुझे पहचाना नहीं ? हाँ, मैं ही मोहन हूँ। क्या मुझे देखते ही तुम्हें खुशी नहीं हुई ?"

दुर्गाबाई ने गर्दन हिलाकर हाँ कहा। उसकी मुद्रा गम्भीर हो गयी थी। मोहन हँसकर बोला—"मेरा अनुमान गलत निकल गया। मैंने सोचा था कि मुझे देखते ही तुम खुशी से उछल पड़ोगी।"

"कौन कहता है कि मुझे खुशी नहीं हुई ?"

"तुम्हारी मुद्रा से ऐसा दिखा नहीं।"

"माँ के हृदय को तुम नहीं जानते, मोहन ! पहले से ही तुम माँ से दूर रहे हो। पुरुष की नजर से देखने वाले—खैर, जाने दो......कुशल से हो न ?"

"कुशल से !" मोहन हँस कर बोला—"कुशल से भी आगे बढ़ गया हूँ। पिता की भविष्य-वाणी सच निकली। उनका अक्षर-अक्षर सच

———

निवाना है।" यह देखकर कि उसकी बात सुनकर माँ का चेहरा अधिक गंभीर हो गया, वह बोला—"क्यों ? क्या तुम्हें बुरा लगा ?"

"मुझे कुछ भी नहीं लगा।"

"मैं इतना ऐश्वर्यशाली हो गया, फिर भी तुम्हें कुछ नहीं लगा ?"

"नहीं।" दुर्गाबाई बोली—"ऐश्वर्य की मेरी कल्पना तुम्हारी कल्पना की अपेक्षा भिन्न है। तुम ऐश्वर्यशाली हो गये—मैं दरिद्री हूँ, पर मैं विश्वास के साथ कहती हूँ कि मेरा सन्तोष तुम्हें नहीं मिला। मुझे किसी का भी भय नहीं लगता ·····

"और क्या मुझे भय लगता है ? तुम ऐसा क्यों सोचती हो ?"

"तुम्हारा चेहरा बताता है।" उसकी ओर ताकती हुई दुर्गाबाई बोली। उसे आभास हुआ जैसे मोहन क्षण-भर के लिए चौंक उठा।

"नहीं-नहीं" मोहन बोला—"मैं बिल्कुल गम्भीर हूँ। मैं किसी से भी नहीं डरता। उलटे सभी मुझसे डरते हैं।"

"यह भी कोई अच्छी बात नहीं। तुम जिस तरह किसी से नहीं डरते, उसी तरह दूसरों को भी तुम से नहीं डरना चाहिए। तुम्हारे प्रति प्रत्येक को आत्मीयता लगनी चाहिए।"

मोहन जोर-जोर से हँसने लगा और बोला—"बुद्धू बने रहने में सन्तोष नहीं, माँ! दुनियाँ मुझसे थरथर काँपे, यही पिताजी की कामना थी। वह पूरी हो गई। क्या सुनकर तुम्हें आनन्द नहीं हुआ ?"

दुर्गाबाई स्तब्ध रही। वह उसकी आँखों के जरिए उसके हृदय को देख रही थी। उसकी घबराई हुई आत्मा उसकी आँखों की बिल्लौरी खिड़की से झाँक रही है, ऐसा उसे लगा। वह बोली—"यह सुनकर कि मुझे आनन्द हुआ इसी तरह निर्भय रहो। किसी से भी मत डरो। पर एक बात याद रखो कि इस दुनिया में एक ऐसी शक्ति है कि उसमें कोई कुछ भी छिपाकर नहीं रख सकता। उस शक्ति को याद रखो—भगवान को याद रखो।"

मोहन ठहाका मारकर हँसने लगा। हँसते-हँसते उसका चेहरा बड़ा

डरावना हो गया। "मैं किसी से भी नहीं डरता—भगवान से भी नहीं ! क्या जरूरत है भगवान से डरने की ? किसी ने उसे देखा नहीं, किसी को वह दिखा नहीं ऐसे अदृश्य से डरने की क्या जरूरत ?"

दुर्गाबाई गम्भीर होकर लगातार उसकी ओर देख रही थी।

एक क्षण के लिए मोहन का हृदय काँप उठा। परन्तु दूसरे ही क्षण मन को सँभालकर वह बोला —"मेरी कोई पूछताछ नहीं की तुमने ? मैं कहाँ रहता हूँ, क्या करता हूँ—यह कुछ भी नहीं पूछा तुमने ?"

"तुमने भी नहीं बताया।" दुर्गाबाई सर्द स्वर में बोली।

मुझे बताने की क्या जरूरत ?" मोहन बोला--तुम्हें वह अच्छा नहीं लगेगा। अच्छा, लो मैं जाऊँ अब।"

"तुम्हारी मर्जी !" दुर्गाबाई ।

"ठीक है, तो जाता हूँ।" कहकर मोहन निकल पड़ा। उसे लगा था कि माँ उसे क्षण-भर के लिए रोककर कुछ पूछेगी और उसके ऐश्वर्य का अन्दाज लेगी, पर माँ ने कुछ भी नहीं पूछा। वह सोच रहा था कि वह माँ को चौंधिया देगा—पर वह निराश हो गया।

यह देखकर कि वह द्वार के बाहर जा रहा है, वह बोली—"किसी से भी मत डरना, मोहन ! पर एक बात याद रखना। भगवान को न भूलना भगवान को याद रखना "

वह बाहर निकल पड़ा। मोटर स्टार्ट होने की आवाज सुनाई पड़ी। फिर भी वह अपने आप ही बुदबुदा रही थी—"भगवान को मत भूलना मोहन ! भगवान को याद रखना !"

उसे लगा, हवा की रफ्तार से जाने वाली मोटर के पीछे माँ के वे अस्फुट शब्द लगातार उसका पीछा कर रहे थे ?

उसे याद आया—उस समय वह मोहन को जाने नहीं दे रही थी—झट वह आया और स्वप्न की तरह चल दिया—मुझे यह क्यों नहीं लगा कि उससे रहने के लिए कहती ? क्या हो गया यह ?

मोहन दुर्गाबाई से मिलने सहज ही नहीं आया था। शरणगाव की सड़क पर ही केशवलाल का पीछाकर उसने उसका खून कर दिया था। केशवलाल बड़ी तेज रफ्तार से गाड़ी चला रहा था। इसी समय उसे शक हुआ कोई उसका पीछा कर रहा है। उस शक के सच होने में अधिक देर न लगी।

केशवलाल डरपोक नहीं था, पर इस समय अलबत्ता वह असावधान रहा था। क्रोध के आवेश में वह घर से निकल पड़ा था। उस आवेश में वह हमेशा की तरह उचित सावधानी बरतने को भूल गया। जल्दी-जल्दी में वह अकेला ही निकल पड़ा था। उसने ड्राईवर को भी साथ नहीं लिया था। मेज की दराज में पिस्तौल निकालकर अपनी जेब में रखने की भी उसे सुध नहीं रही थी।

पीछा करने वाले की मोटर जब बिल्कुल ही उसकी गाड़ी के पीछे आ गई और उसने गाड़ी के सामने के शीशे में से देखा तो उसे दिखाई दिया कि उसका पीछा करने वाला भीकू है।

अपने आप हँसकर उसने मोटर की रफ्तार कम की और रोका। मोटर से उतर कर भीकू उसके सामने गया और बोला —"यह कैसी जल्दी कर दी आपने? कम-से-कम मुझे खबर देनी थी?"

"तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि मैं इस तरफ आया हूँ?" केशव-लाल ने पूछा।

"सुन्दरी जी ने बताया था।" मौक बोला।

एकदम आगे से बाहर होकर केशवलाल चिल्ला पड़ा—"सुन्दरी
तुम ने कहा ? क्या कहा उसने · ?"

"आप अकेले ही निकल पड़े थे, इसलिए वह चिन्तित हो उठी"
"झूठ ! साफ झूठ !" केशवलाल बोला "मेरा तुम पर विश्वा
नहीं · " वह एकदम रुक गया।

हवा के वेग से एक दूसरी मोटर उनके सामने से निकल
केशवलाल को शक हुआ। क्या सुन्दरी थी उस मोटर में ? वह मौक
कुछ पूछने जा ही रहा था कि इसी समय···।

तीर की तरह आ रही एक दूसरी मोटर उनके सामने आकर रु
मोहन एकदम उसमें से कूदकर केशवलाल पर टूट पड़ा।
घबराकर पीछे हट गया। मोहन ने केशवलाल को सोचने के लिए
समय न दिया। उसने एकदम पकड़कर जोर-से उसका गला दबा दिय
"ठहरो-ठहरो। मेरी बात तो सुन लो।" केशवलाल कह रहा थ

परन्तु मोहन ने उसे दूसरी साँस लेने की भी फुरसत नहीं दी।

"अब जो कुछ कहना हो जाकर मेरे पिता जी से कहना।"
कहकर उसने इतनी जोर से उसका गला दबोचा कि वह उसी क्षण ज
पर गिर पड़ा। उस समय वे एक गहरी कंदरा के करार पर खड़े
लात की एक ठोकर से उसने केशवलाल को कंदरा में फेंक दिया।
अपनी मोटर में बैठकर कभी का नौ-बारह हो गया था।

तृप्ति के समाधान से मुड़कर मोहन ने कंदरा के नीचे देखा। वि
विछिन्न हुई केशवलाल की देह पड़ी थी।

"पिता जी ! पिता !" मोहन अपने आप ही बोला—"आपकी अ
का पालन हो गया। विश्वासघाती से मैंने बदला ले लिया। मैं
हो गया।"

इस काम को पूरा करके वह अपनी माँ से मिलने गया था।
की आज्ञा पूरी करने के कारण ही उसे अपनी माँ की याद हो आई।

वह आन म सी मिलने क्य गया यह वह स्वय ह नह जान पाया। उसे लगा कि उसने एक बड़ा काम कर डाला है और किसी को अब उसे शाबाशी देनी चाहिए। शरणगाँव से किसी समय वह भाग गया था— उस सड़क को, उस सड़क की धूल को, अपना विजय समाचार सुनाने के लिए ही क्या वह वहाँ गया था ?

वह जैसा गया वैसा ही लौट आया था, पर माँ के दो शब्दों ने ही उसके हृदय को चिकोटी काट ली थी। उस चिकोटी के कारण हुए नाजुक जख्म को वह अपने मनोबल से पोंछ डालने की कोशिश कर रहा था, पर क्या वह पुछ गया ? क्या उसका दाग जाता रहा ?

वह कृत-कृत्य हो गया था। उस नाजुक जख्म की याद को भूल जाने का निश्चय करके वह अपने घर लौट आया।

केशवलाल की हत्या का समाचार दूसरे दिन बिजली की तरह सर्वत्र फैल गया। लाश के छिन्न-विच्छिन्न हो जाने के कारण डाक्टरी जाँच में मृत्यु के निश्चित कारण का पता नहीं चल पाया। केशवलाल ने कंदरा में कूदकर आत्म-हत्या की या किसी ने उसका खून किया, पुलिस यह निश्चित नहीं कर पा रही थी। केशवलाल के व्यवहार में बहुत-सी झंझटें पैदा हो गई थी। उसके हिसाबों में बड़ा गोलमाल था। उसका दिवाला पिटने का मौका आ गया था, ऐसा उसकी मृत्यु के बाद मालूम हुआ। सब लोगों को यही लगा कि इज्जत जाने के डर से उसने आत्म-हत्या कर ली होगी। फिर भी पुलिस की तहकीकात जारी थी, परन्तु उस तहकीकात से कोई फल न निकला। कहीं से भी कोई धागा हाथ नहीं लग पाया। दोनों की छीना-झपटी के समय जमीन पर दोनों के पैर के जो निशान उभर आये थे उन सब को मोहन ने बिल्कुल पोंछ डाला था। मोटर किस मार्ग से गई और किस मार्ग से आई इसका पता न चल पाए, इसलिए मोहन ने चाक के निशानों पर उलटी-सुलटी मोटर चलाकर उन्हें नष्ट कर डाला था। मोटर के चाक के निशानों को इस प्रकार नष्ट किये जाने के कारण ही पुलिस वालों को हत्या का शक था और

इसीलिए उन्होंने अपनी तहकीकात जारी रखी थी ।

ऐसा मानकर कि केशवलाल की हत्या हुई है, पुलिस ने, हत्यारे का
पता लगाने वाले शख्स को एक मोटी रकम इनाम में दी जायगी, ऐसी
घोषणा भी कर दी थी । पर कोई भी आगे नहीं आया ।

अकेला भीखू ही यह जानता था । केशवलाल को बचाने की कोशिश
न कर वह भाग गया था । इस कारण हत्यारे का पता देने की उसे
हिम्मत नहीं पड़ रही थी । इसके सिवा उसे मोहन का डर लगता था सो
अलग । वह अगर आगे आता तो मोहन चाहे जिस तरह उसके प्राण
लिये बिना न रहेगा । मोहन अगर पकड़ा जाता, फिर भी वह किसी न
किसी तरह किसी दूसरे के जरिये उसकी जान ले लेगा, यह भीखू जानता
था । बल्कि इसका उसे पूरा यकीन था । इसीलिए उसने अपने मुँह पर
ताला डाल दिया ।

बेचारी सुन्दरी बेहद पस्त हो गई थी । केशवलाल से उसका प्यार
नहीं था, परन्तु दोनों ने इतने वर्ष परस्पर सहवास में बिताए थे । उस
सहवास के दुख का प्रभाव उसके मन पर पड़े बिना न रहा ।

केशवलाल की कृपा से उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी । उसे
जीविका के लिए उसे दूसरे के मुँह की ओर ताकने की जरूरत न थी
उलटे उसकी साम्पत्तिक स्थिति इतनी सुदृढ़ थी कि वक्त मौके पर व
मुक्त हस्त से दूसरों को मदद दे सकती थी ।

जुए के अड्डे अब टूट गए थे । केशवलाल के सारे व्यवहार जहाँ के
तहाँ रह गए थे । मोहन का मार्ग निष्कंटक हो गया था ।

सुन्दरी का बार-बार जी चाहता था कि जाकर मोहन से मिले, प
उसे हिम्मत नहीं हो रही थी । स्वयं मोहन भी आकर उससे कभी
मिला था । सुन्दरी के कारण ही मोहन केशवलाल से बदला ले सक
था । इसके बावजूद उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए भी व
उसके घर नहीं गया था ।

इधर कुमार विलायत चल दिया था । कुमार के विलायत चले दे

के कारण दुर्गाबाई घर में अकेली रह गई थी । इसलिए लता मिशन-हाउस में रहना छोड़कर अब दुर्गाबाई के घर ही रहने लगी थी। वह उसके प्रत्येक कार्य में बड़े उत्साह से हाथ बँटा रही थी। कुमार की अपेक्षा लता के सहवास और सहकार्य में दुर्गाबाई के दिन बड़े आनन्द में बीतने लगे।

सुन्दरी कभी-कभी आकर पादरी से मिल लिया करती । लता के काम के लिए वह पहिले की तरह ही पादरी को रुपये दे आया करती थी, परन्तु आजकल जब लता दुर्गाबाई के घर रहने लगी थी उसने पादरी ने रुपये लेना अस्वीकार कर दिया था। इसीलिए सुन्दरी द्वारा दी गई रकमें पादरी के पास अमानत के तौर पर जमा थीं।

लता की अब वह उम्र न थी कि वह "देवी देती है' वाले भुलावे में फँस जाती। मैं कौन हूँ, यह जानने की उसकी जिज्ञासा बार-बार जाग उठती। पर उस समय दुर्गाबाई उसे समझा देती। वह कहती— क्या करना है तुझे जानकर कि तू कौन है, तू बेसहारा है, और यह जानकर कि तू बेसहारा है कोई तेरी मदद कर रहा है ? जो तुझे मदद कर रहा उसके प्रति तुझे कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा होती है यह स्वाभाविक ही है। इसके लिए मैं तुझे दोष नहीं देती, पर मैं तुझसे यह कहना चाहती हूँ कि जो लोग गुप्त दान दिया करते हैं, वे यह नहीं चाहते कि उनका उपकार-ऋण चुकाया जाय। उस गुप्तता में ही उन्हें आनंद आता है, वे नहीं चाहते कि उनका वह आनन्द भंग हो। इसलिए अपनी इस जिज्ञासा को दबा देना ही अच्छा..."

"पर मैं कौन हूँ ?" लता बोली— "क्या आप को अच्छा नहीं लगता कि यह मुझे मालूम हो ?"

"तुझे यह मालूम होने की क्या जरूरत ?"—दुर्गाबाई बोली— "ईश्वर की इस दुनिया में तूने जन्म लिया है। यह तेरा सौभाग्य है जो तू यह नहीं जानती कि तू कौन है। यदि हमें मालूम हो जाय कि हम कौन हैं तो इससे हमारा फायदा ? कुमार को ही देखो । वह कौन है,

यह वह जानता है। वह मेरा बेटा है—पर वह और एक का भी बेटा
है—उस और एक का याने उसके बाप का पता उसे चाहे न मालूम है।
मुझे यह बताने मे कोई सकोच नही मालूम होता कि खून करके डाके
डालकर सरकार का गुनहगार साबित हुए उसके बाप को फांसी की सजा
मिली थी " लता के रोंगटे खडे हो गए । एक क्षण के लिए रुककर
दुर्गाबाई बोली "यदि यह कुमार को मालूम हो जाए तो इसमे उसे
क्या फायदा होगा ? आज उसका मन निर्मल है—उसकी वृत्ति निर्मल
है—बर्ताव निर्दोष है। यदि उसे अपनी आनुवंशिकता का ज्ञान हो गया
तो क्या तू सोचती है कि उसके मन पर उसका कोई अच्छा प्रभाव
पड़ेगा ? फिर क्षण भर के लिए वह रुकी और बोली—"कुमार जब लौट
कर आए तो तू भी उसे यह रहस्य मत बताना। वह सिर्फ इतना ही
जानता है कि उसका बाप फरार हो गया है। मुझे छोड़कर यह कोई
नही जानता कि बदले हुए नाम से वह फांसी पर चढ़ा है। तुझसे भी
मैंने अभी तक यह नहीं कहा था, पर आजकल देखती हूँ कि तू अपना
पूर्व-इतिहास जानने के लिए बड़ी बेचैन हो उठी है—बड़ी उतावली हो
गई है। मान ले, तेरा भी इतिहास यदि कुछ इसी तरह का हो तो उसे
जान लेने पर क्या तुझे सतोष हो जायगा ? अज्ञान मे तुझे आज प्राप्त
हो रहा सुख क्या तू खो नही देगी ? क्या लाभ होगा उससे ? पर इससे
तू यह गलतफहमी मत कर लेना कि तेरा भी पूर्व-इतिहास इसी तरह
का है। शायद तू किसी की छोड दी गई लड़की होगी। शायद आज तेरे
मां-बाप जीवित न होंगे। उनके द्वारा तेरे लिए कर दिये गए प्रबंध मे
उनका कोई मददगार तुझे यह मदद दे रहा होगा। तुझे क्या जरूरत
है यह सब जानने की ? क्या फायदा होगा तेरा इसके कारण ? . "

"पर मैं कौन हूँ ?"—लता बोली—"मेरी जाति क्या है ?"

"क्या करना है तुझे अपनी जाति जानकर ?"—दुर्गाबाई बोली—
"तेरा भविष्य अब तय हो ही चुका है। तेरी जाति जानने की जिज्ञासा
यदि किसी को होनी चाहिए तो मुझे ही होनी चाहिए, पर मुझे उसकी

रवाह नहीं। सारे मनुष्य मेरी नजरों में एक समान हैं। तेरा शील म रही हूँ। कुल और जाति की पूछताछ करने की मुझे जरूरत नहीं लूम होती। तेरा शील मुझे पसंद है। कुमार को भी पसंद है। फिर ति और कुल के बारे में जानने की झंझट में तू क्यों व्यर्थ पड़ती है? धेरे में पड़े हुए उस दुर्भाग्य को व्यर्थ ही खोजकर आत्मघात कर लेने ी क्या जरूरत?"

इतज्ञता की निस्सीम भावना से लता का हृदय भर उठा। उसके ह से एक शब्द भी बाहर नहीं फूट रहा था। उसे हृदय से लगाकर र्गाबाई बोली—"मैं अनाथ हो गयी थी, लता! उस समय मैं भगवान लड़का माँग रही थी। भगवान ने मुझे कुमार दिया। मेरी आकांक्षा स लड़के से पूरी हो गई, पर मेरे अन्तर की अन्तरात्मा का समाधान समें नहीं हुआ। मैंने जो माँगा था वह भगवान ने दे दिया सही पर ैं क्या चाहती थी, यह भी भगवान जानता था और वह बिना माँगे गवान ने मुझे दे दिया। मैं एक लड़की भी चाहती थी—यह मैं स्वयं नहीं ानती थी। परन्तु मेरे घर आई तब मुझे पता चला कि मेरा अभाव गवान ने मेरे अनजाने पूरा कर दिया। मैं आज हूँ कल नहीं रहूँगी। रे बाद मेरे कुमार को कौन संभालेगा, यह भगवान ने महसूस किया और इसीलिए उसने तुझे मेरे पास भेज दिया। मेरी सारी कामनाएँ रिपूर्ण हो गई। अब कुमार जहाँ लौटा कि बस... इस कल्पना-मात्र े ही दोनों के हृदयों में आनंद का सागर उमड़ उठा।

लता की वह बेकाबू हुई जिज्ञासा उस दिन से धीरे-धीरे अस्त होने लगी। उसकी वृत्ति दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक प्रसन्न होने लगी। बड़े उत्साह से प्रत्येक काम में वह दुर्गाबाई का हाथ बँटा रही थी। यही नहीं, बल्कि दुर्गाबाई के प्रायः सभी कार्यों का दायित्व अब उसी ने अपने पर ले लिया था।

विलायत से कुमार के खत आते थे। लता कुमार को खत भेजती थी। इस पत्र-व्यवहार से ही वे मरुस्थान का सुख अनुभव कर रहे थे।

२०

कुमार के विलायत जाने के बाद से उसके लौटने तक का लता का सारा समय काम करने में बीता। कुमार का विरह उसके मन को बेचैन न करे इसलिए वह नये-नये काम खोजकर निकालती और उनमें अपना मन उलझाए रखती थी। उसके इन कामों में दुर्गाबाई भी हाथ बँटा देती थी। दुर्गाबाई को भी कुमार के चले जाने के बाद सूना-सूना सा लगता था परन्तु लता के सहवास में कुमार का अभाव दूर हो जाता था। यही नहीं, बल्कि उसे लग रहा था कि उसकी गृहस्थी में एक नया जोड़ लग गया है। इसके बावजूद जिस लड़के के लिए उसने अपनी सारी जिंदगी खपायी थी, उसके दृष्टि से ओझल हो जाने के कारण उसका विरह उसके मन को उद्विग्न कर रहा था और वह उसके आगमन की ओर आँखें लगाये बैठी थी।

बम्बई में मोहन के उद्यम यद्यपि पहले की तरह ही चल रहे थे, फिर भी उसका कोई प्रतिस्पर्धी न होने के कारण उसकी ईर्ष्या ठण्डी पड़ गयी थी। जिन्दगी में उसे मजा नहीं आ रहा था। केशवलाल की मृत्यु के बाद उसका कोई नया प्रतिस्पर्धी पैदा न होने के कारण अपने उस एकमेव साम्राज्य से वह ऊब उठा था। पहिले से ही उसका जीवन हमेशा संघर्ष करने में ही बीता था। उस संघर्ष के रुकते ही जीवन का उन्माद मंद पड़ गया। केशवलाल अपने पहिले कार्य-काल में विलासी क्यों हुआ, इसका कारण मोहन को अब मालूम होने लगा।

जब पिता के साथ वह बम्बई आया, उससे पहिले केशवलाल का

म्राज्य भी इसी तरह एकमेव था, इसी तरह उसका भी सारी बम्बई र आतंक छाया हुआ था, इसी तरह वह भी खूब मालामाल हो रहा ा, परन्तु इस समय उसका कोई प्रतिस्पर्धी न होने के कारण उसकी र्या की आग भड़काने वाला दूसरा कोई न था। इसीलिए उस ाग को तुष्ट करने के लिए वह विलास में उलझा रहना चाहता था। हन को लगा, क्या मैं भी विलासी हो जाऊँगा ? क्या मैं भी स्त्रियो 'जाल में फँस जाऊँगा ? जिस स्त्री-जाति से मैंने हमेशा द्वेष किया, ा उसी को अपनी कहकर हृदय से लगाऊँगा ? उसने मन में दृढ़ श्चय किया—मैं दुर्गाबाई का बेटा हूँ। मैंने माँ से मनोबल प्राप्त या है। इस मनोबल के जोर पर ही मैंने अपने कार्य-क्षेत्र को इतना बढ़ाया है और इसी मनोबल के पर मैं अपने हर निश्चय पर कायम रहूँगा।

उसके काम उसी तरह शुरू थे, पर पुलिस अफसरो को उसका पता नही लग रहा था। अफसरो को केशवलाल के पहिले शक था ही—उसके कार्यों पर उनकी निगरानी भी रहती थी—पर उसकी मृत्यु के बाद पुलिस वालो ने सोचा था कि अब उस तरह के गुनाह शहर मे न होंगे।

पर ऐसा न हुआ। इसीलिए पुलिस के सामने भी एक विकट समस्या उपस्थित हो गई। उनका ख्याल था कि केशवलाल का ही कोई सिद्ध उसक कार्य को आगे चला रहा है और इसी तर्क के अनुसार उन की तहकीकात जारी थी। यही कारण था कि मोहन का मार्ग निष्कंटक था।

जिस दिन कुमार के बैरिस्टरी पास होने का तार शरणगाँव पहुँचा उस दिन समूचे गाँव में आनन्द का सागर उमड उठा। विशेषतः पादरी बाबा के आनन्द की तो सीमा नही थी।

वैसे देखा जाय तो देश में बहुत से लोग बैरिस्टर होकर आ गये थे। इसलिए बैरिस्टर होकर आना कोई बड़ा शेर मारना नही था,

परन्तु शरणगाँव जैसे गाँव के लिए बेशक यह गौरव की बात थी। उस गाँव से कोई आज तक एल० एल० बी० भी नहीं हुआ था।

जो लोग पहिले कुमार की निन्दा करते थे, वही अब उसकी मुँह-भर कर प्रशंसा करने लगे। पुत्र की सफलता के कारण माता की भी सराहना होने लगी। जो लोग दुर्गाबाई के कार्य के प्रति थोड़ी भी सहानुभूति नहीं रखते थे, वे लोग भी अब उसकी शिक्षा की तारीफ करने लगे।

यह समाचार सुन्दरी के कानों में पहुँचा या नहीं, पादरी को इसका पता न था। क्योंकि तार आये और उसके लौटने की खबर अखबारों में प्रकाशित हुए बहुत दिन बीत चुके थे, पर सुन्दरी से कोई खबर नहीं आई थी। पादरी को आशा थी कि ऐसे समय वह स्वयं शरणगाँव आयेगी और उससे मिलेगी, परन्तु उसके न आने के कारण पादरी खिन्न हो उठा।

कई दिनों से सुन्दरी सन्ता से मिलने भी नहीं आई थी और न उसने किसी प्रकार से उसके कुशल-समाचार जानने की चेष्टा ही की थी। वह अपने मन को तैयार कर रही थी। वह जानती थी कि पहिले जिस तरह वह पादरी से गुप्त रीति से मिलती थी, उस तरह गुप्त रीति से मिलना अब सम्भव नहीं था। अब सन्ता बड़ी हो गई थी। वह समझने लगी थी। वह सब तरफ घूमती थी, सहज ही नजरों में भर आनेवाली सुन्दरी जैसी उसकी नजरों से छिपी न रह सकती थी। इसीलिए उसने शरणगाँव आना बन्द कर दिया था।

एक तरह से वह सन्यासिनी का जीवन व्यतीत कर रही थी। दुर्गा-बाई का आदर्श उसकी नजरों के सामने था। एक दृष्टि से उसके और दुर्गाबाई के जीवन में समानता थी। दुर्गाबाई की तरह वह भी एक [illegible] की सहधर्मचारिणी थी। विवाहित पत्नी की आत्मीयता [illegible] के विश्वास के साथ जीवन बिताया था। शंकर के [illegible] के बाद से दुर्गाबाई जिस तरह से जीवन बिता रही थी उस

स्वयं अपने पर से वह उन पतिताओं की कल्पना करती थी। गोवा का कलाकार समाज उस समय जाग उठा था। अनादि काल से चला आ रहा और धर्म के नाम पर टिका रहा त्याज्य जीवन त्याग देने के लिए उस समाज के स्त्री-पुरुषों में बड़े जोरों के प्रयत्न शुरू हो गए थे।

उस आन्दोलन में वह बड़े उत्साह से भाग लेने लगी। उस कार्य के लिए मुक्त-हस्त से चन्दा देने में वह हमेशा अग्रसर रहती। वह कार्य उसके लिए एक समाधान का स्थान हो बैठा था।

एक दिन एक थियेटर में अचानक मोहन से उसकी मुलाकात हो गई। मोहन की नजर बचाकर वह सटक रही थी, परन्तु मोहन के उस की ओर देखकर मुस्करा देने के कारण वह ठिठक कर खड़ी हो गई। मोहन उसके सामने जाकर बोला—"मैं अत्यन्त आभारी हूँ तुम्हारा। तुमने मेरे जीवन को सार्थक कर दिया।"

वह हक्का-बक्का हो उठी। क्या बोले, यह उसे सूझ नहीं पा रहा था। एक क्षण के लिए ही उसे लगा कि एकदम उसके गले में अपनी बाहें डाल दे।

वह आगे बोला—"क्या हाल है तुम्हारा आजकल ?"

"ठीक ही है।"—एक लम्बी आह भरकर वह बोली।

"ठीक है। इसी तरह चलने दो।" हँसता हुआ मोहन बोला—"मेरी आँखें हैं। मैं देख रहा हूँ। जो कर रही हो वह बड़ा अच्छा काम है। उसी को करती रहो।" इतना कहकर वह एकदम चल दिया।

भूली-विसरी याद पुनः जाग उठी। राख के तले दाब कर रखी गई चिनगारी फूँककर भड़का दी गई थी। पुनः उसके जीवन में उद्वेग उत्पन्न हो गया। इष्ट कार्य में विक्षेप होने लगा। उसे पुनः लगने लगा कि मोहन से जाकर मिले। एक दिन उससे नहीं रहा गया। हिम्मत करके मोहन से मिलने वह उसके घर गयी। संयोग से मोहन घर था। वह ...न को अनपेक्षित न लगी। उसे देखते ही उसने पूछा—"क्यों हो ?"

"यह पूछने मैं आई हूँ कि उस दिन तुमने मुझे क्यों छेड़ा ? मैं नजर बचाकर जा रही थी तुम्हारी। यद्यपि मेरा जी कर रहा था कि तुमसे फिर मिलूँ, पर मैं अपने मन को पक्का करके तुम्हें टाल रही थी। क्यों तुमने मुझे छेड़ा ?"—सुन्दरी ने कहा।

"मुझसे गलती हो गई।" मोहन बोला और हँस पड़ा।

सुन्दरी चिढ़ उठी थी। झल्लाकर बोली—"गलती हो गई ? पहिले किसी का गला काट देना और फिर कहना कि गलती हो गई।

"ठहरो। गला काटना तो मेरा धन्धा ही है। पर ऐसे समय मैं यह स्वीकार नहीं करता कि मैंने गलती की। इसे तुम अपना भाग्य समझो कि इस समय मैंने यह स्वीकार कर लिया।"

"सिर्फ स्वीकार कर लेने से ही गलती नहीं सुधर जाती। गलती यदि सुधारना ही चाहते हो तो ..." कहकर वह कुछ खोयी-सी स्तब्ध हो गई।

"तो क्या ?"—मुग्धता से हँसता हुआ मोहन बोला 'बोलो बताओ—तो क्या करना चाहिए मुझे तुम्हारे लिए ? क्या केशवलाल के स्थान की पूर्ति करूँ ? क्या तुम नहीं जानती कि बाहर मैंने वह पूर्ति पूरी कर दी है ?

"मैं नहीं जानती" —सुन्दरी बोली — "मैं आजकल उस दुनिया में ही नहीं रहती।......उस स्थान की पूर्ति हो गई परन्तु तुमसे यह कहते समय कि तुमने वह पूर्ति कर दी है तुम मुझे भूल गये।"—यह देखकर कि मोहन हँस पड़ा वह बोली—"मुझे छोड़ देने से उस स्थान की पूरी तरह से पूर्ति नहीं होती।"

'तो क्या मैं तुम्हारा केशवलाल बनूँ ?' —मोहन ने स्वर में व्यंग भर कर पूछा।

'नहीं।"—सुन्दरी बोली—"मुझे केशवलाल नहीं चाहिए—मुझे केशवलाल की चाह नहीं थी—नहीं चाहती थी इसीलिए न, मैंने तुमसे यह सब कहा ? मुझे मोहन चाहिए......"

वह जोर-जोर से हँसने लगा। कहकहों के बीच ही वह कोच पर पड़कर लोटने लगा। यह देख सुन्दरी बोली—"इस तरह हँसते क्यों हो?"

"हँसूँ नहीं तो क्या करूँ? मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि बैजनाथ लाल का सर्वस्व हरण करते समय तुम भी मेरे गले पड़ जाओगी।"

"बैजनाथलाल के एक चौपाये के नाते नहीं—इसलिए नहीं कि बैजनाथ लाल के सब कुछ में से मैं भी एक थी, बल्कि मैं जैसी हूँ वैसी अगर स्वीकार करते हो तो…"

"कौन कहता है कि मैं तुम्हें स्वीकार करूँगा?" मोहन गंभीर हो कर बोला—"सुन्दरी मैं एक स्वतन्त्र जीव हूँ। पराधीनता से मुझे इतनी रुचि नहीं जो प्रेम के बंधन में पड़ूँ। प्रेम बंधन है—स्त्री बन्धन है—फिर वह विवाहित हो या रखैल हो—विवाहित पत्नी को त्यागकर मरते जाने वाले पिता का मैं बेटा हूँ। मैं इस फंद में नहीं पड़ूँगा।"

हताश होकर सुन्दरी सामने की बैठक पर बैठ गई। कितनी ही देर तक दोनों एक दूसरे की ओर देख रहे थे। मोहन की बात खतम हो गई थी, पर सुन्दरी को अभी जवाब देना था। बात किस तरह शुरू करे यही वह नहीं समझ पा रही थी। एक क्षण भर विचार कर वह बोली—"तुम्हारी माँ को जितना मैं पहचानती हूँ उतना तुम भी उन्हें न पहचानते होगे। उनका जीवन मेरे लिए मार्ग-दर्शक हुआ है—मेरे जीवन की एक बड़ी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने का भार उसने उठाया है—वह यह जानती नहीं। अनजाने ही वह मेरे इस काम को कर रही है। मेरी बहिन की माँ हो गई है वह। कौन जाने शायद कल वह तुम्हारी सास भी हो जाएगी।" मोहन ने चौंककर उसकी ओर देखा, तब वह बोली—"क्यों, चौंक क्यों गए? यह भी रामायण जैसा हो आज ऐसा मुझे लगा।"

"हूँ-हूँ, अब याद आया?" मोहन बोला—"माँ मुझे बचपन में रामायण पढ़कर सुनाया करती थी—मैंने सुना था वरण की कभी

साध्वी, और लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला। तुम चाहती हो कि वैसे ही तुम्हारे साथ भी हो जाए। है न? वाह, तुम्हें रामायण की खूब याद आई?"

सुन्दरी पुनः चुप हो गई। पुन. बहुत सा समय गुजरा। थोड़ी देर के बाद सुन्दरी बोली—"मैं जाऊँ अब?"

"जाओ।"—मोहन बडी गम्भीरता से बोला।

"पुनः आऊँ?" ऐसा पूछकर सुन्दरी बडी आतुरता से उत्तर की प्रतीक्षा करती रही।

एक क्षण रुककर मोहन बोला—"हाँ, आओ, खुशी से आ सकती हो, पर एक मित्र के नाते ही आना होगा। तुमने मुझ पर उपकार किये हैं। तुम्हारा हृदय मैं पहचान गया हूँ। तुम मुझे दुख नहीं देना चाहती। तुम बेसहारा हो, अपंग भले ही न हो, पर अनाथ हो। मैं तुम्हारा नाथ होऊँ, यह सम्भव नहीं, पर तुम्हारी मित्रता मैं नहीं ठुकराऊँगा। आना, बैठना, बातें करना और चली जाना। बस इतना ही हो सकता है।"

सुन्दरी गद्गद् हो उठी। उसके मुँह से शब्द बाहर नहीं निकल पा रहा था। आवेग से बेकाबू हुए मन को कठोर करके आँखें पोछती हुई वह चल दी।

'गरीब बेचारी?'—मोहन मन-ही-मन बोला।

खिड़की के पास जाकर वह खड़ा हो गया। रास्ते में जाती हुई सुन्दरी ने मुड़कर पीछे देखा। मोहन हँस पड़ा—वह भी हँस पड़ी।

उस दिन सुन्दरी अत्यन्त सन्तोष से घर गई। उसे लगा जैसे स्वर्ग उसके हाथ लग गया।

२१

जब कुमार विलायत से लौटा तब उसका स्वागत करने के लिए दुर्गाबाई, लता और पादरी बाबा बम्बई गये थे।

बम्बई में कुमार का अभिनन्दन करने के लिए स्थान-स्थान पर सभायें आयोजित हुई थीं जिनमें उसका सत्कार किया गया था।

वे जब शरणगाँव आए तो गाँव के लोगों ने उनका एक बड़ा जुलूस निकाला। यह सब देखकर दुर्गाबाई का हृदय भर उठा था। लता के आनन्द की तो सीमा ही नहीं रही थी। उसे यकीन हो गया था कि अब जरूर वह शरणगाँव से बाहर की दुनिया में जायगी जिसका हाल उसने अभी तक सिर्फ सुना था। कुमार का स्वागत करने जब वह बम्बई गयी थी, उस समय उस नगर को देखकर वह दग रह गयी थी। उसकी अवस्था उस मछली की तरह हो गयी थी जो कुएँ से निकल कर एकदम किसी समुद्र में जा पड़ी हो।

बम्बई जाने के लिए वह बहुत उतावली हो उठी थी। पर यह देख कर कि दुर्गाबाई शरणगाँव छोड़ना नहीं चाहती, उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया था। बैरिस्टर हो जाने के कारण कुमार अब बम्बई में रहने के लिए बाध्य था। परन्तु शरणगाँव छोड़ना दुर्गाबाई की जान पर आ रहा था। जिस समय वह विलायत में था उस समय लाचार होकर उसे अपनी माँ का वियोग सहन करना पड़ा था। उसने माँ से कहा—"अब यहाँ अकेली छोड़कर जाऊँ? तुमने जन्म-भर कष्ट सहन किये, ... का व्रत अखण्ड रूप से पाला। फल की आशा तुमने

कभी नहीं की, पर क्या तुमने ही हमें यह नहीं सिखाया है कि किये हुए कर्मों का भला या बुरा फल कभी-न-कभी बिना मिले नहीं रहता ? भगवान से तुमने सुख का जीवन कभी नहीं मांगा, पर अब भगवान ने ही सुख की थाली परोसकर तुम्हारे सामने रख दी है। उसे ठुकरा देना क्या भगवान का अपमान करना न होगा ?"

"तुम सच कहते हो कुमार !"—दुर्गाबाई बोली—"परन्तु यहाँ के कामों में मैं इतनी उलझ गई हूँ, इस मिट्टी में मैं इतनी मिल गई हूँ कि शरणगाँव की मिट्टी को छोड़कर बम्बई का सोना हाथ में लेना मेरे लिए बड़ा कठिन लग रहा है। आज तुम जाओ। वहाँ जरा जमो। अच्छी तरह कमाने लगो। फिर मैं आऊँगी। तभी लता भी आयेगी, भूलो मत। शिक्षा के लिए तुमने जो कर्ज लिया है वह अभी तुम्हारे सिर पर है। जब तक उसे तुम पूरा नहीं अदा कर दोगे तब तक तुम अपने आपके मालिक नहीं। तब तक तुम गृहस्थी नहीं सजा सकते—"

कुमार स्तब्ध हो गया। उसका उत्साह जाता रहा। सचमुच ही उसे उस कर्ज का विस्मरण हो गया था। वह कर्ज उसे इतना सहज रीति से प्राप्त हुआ था कि उसके प्राप्त होने का ज्ञान उसके मन से बिल्कुल ही जाता रहा था। उस कर्ज को प्राप्त करने के लिए उसे कुछ भी कष्ट नहीं हुए थे। इसीलिए उसे वह भूल गया। उसे लगा कि उसने गुनाह किया। वह बोला—"माफकर दो माँ ! मैं भूल गया था। भूल गया कहने को मुझे शर्म आती है, परन्तु तुम्हारे सामने अपनी भूल को स्वीकार करने में मैं क्यों डरूँ ? सचमुच इस कर्ज की बात मेरे दिमाग से निकल गई थी। मुझे क्षमा कर दो और इस कर्ज की पाई-पाई अदा होने तक तुम्हारा वियोग सहन करने का धीरज मुझ में आवे, ऐसा मुझे आशीर्वाद दो।"

ये सारी बातें लता के सामने ही हुईं। उन बातों से उसे जो सीखना था, वह उसने सीख लिया। यह सोचकर कि सुख का जीवन अभी कुछ दिनों के लिए और स्थगित हो गया है, उसका दिल बैठ

गया। दुर्गाबाई के ध्यान में यह बात आ गई। वह बोली—"यूँ हिम्मत क्यों हारती हो, लता ! काल अनन्त है। जीवन अनन्त है। उसका यह छोटा-सा क्षण महान करना चाहिए। दुःख में भी बड़ा आनन्द होता है, विरह में भी आनन्द होता है—वहाँ मिलन की आशा होती है। अभी कुछ दिन और धीरज रखो। सेवा-धर्म करने का जो अवसर तुम्हें मिला है, उसका यहाँ पूरा-पूरा फायदा उठा लो। याद रखो, शरणार्थ छोड़ देने पर भी मेरा यही कार्य तुम्हें आगे करना है। त्याग के लिए ही हमने जन्म लिया है। त्याग में ही हमारा वैभव है। मेरा अभी तक यही मत है कि जब तक त्याग की वृत्ति तुम्हारे रोम-रोम में नहीं समा जाती, तब तक तुम्हें गृहस्थी में नहीं पड़ना चाहिए।"

कुमार बम्बई चला गया। उसने वहाँ प्रैक्टिस शुरू कर दी। आरम्भ में ही उसे कुछ महत्वपूर्ण मुकदमे मिल गये और उन्हें जीत लेने के कारण उसका एकदम नाम हो गया। जूनियर होते हुए भी उसने बड़े तेज बैरिस्टरों का मुकाबला किया।

उसकी वकालत धड़ल्ले से बढ़ने लगी। वह बड़ी मितव्ययता से रहता था। अपने पहिले के रहन-सहन में उसने कोई विशेष फर्क नहीं किया। खादी की पोशाक में ही वह कोर्ट जाया करता। अपने घर का रहन-सहन भी उसने बड़ी सादगी का रखा था। किसी भी प्रकार की शान-शौकत उसके घर में नजर नहीं आती थी।

उसका मन कर रहा था कि एक बार उसकी माँ आकर उसका यहाँ का ठाठ देख जाय। उसने दो-चार बार उसे लिखा भी, पर वह बम्बई आना टाल रही थी। शिक्षा के लिए जो कर्ज उसने लिया था उसे चुका देने की ताकत अब उसमें आ गई थी। उसने अपनी माँ को यह खबर भेजी कि वह पूरा ऋण चुकाने को तैयार है।

दुर्गाबाई जाकर पादरी से मिली और उससे कहा कि कुमार कर्ज चुकाने को तैयार है।

पर साहूकार का ही पता नहीं था। जिस दिन कुमार के लिए २१

हजार रुपये पादरी को देकर सुन्दरी गई, उस दिन से उसकी और पादरी की भेंट ही नहीं हुई थी। जब पादरी ने सुन्दरी का नाम गुप्त रख कर दुर्गाबाई से कहा कि साहूकार का पता लगाना होगा, तब दुर्गाबाई बोली—"बाबाजी, उस साहूकार की कसकर खोज कीजिए जिससे यह ऋण-भार हमारे सिर से जल्द उतर जाय।" इतना कहकर वह चल दी।

पर बेचारा पादरी भी क्या खोज करता? सुन्दरी का पूरा नाम भी वह नहीं जानता था। आजकल लता के लिए उसके पास से रुपये और उपहार आना भी बन्द हो गया था। इस कारण वह जीवित भी है या नहीं। इसी का पादरी को शक हो रहा था।

वह खोज भी कहाँ करता? लता जिस बोर्डिङ्ग हाउस में पहले रहती थी, उस बोर्डिङ्ग हाउस की प्रबंधिका से जाकर उसने पूछा। पर वहाँ भी उसका कोई पता न लगा। उसने ऐसी भाषा में कुछ समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये कि जिससे सुन्दरी अगर कहीं हो, तो उन्हें पढ़ते ही समझ जाय। इसका अलबत्ता असर हुआ। एक पत्र पादरी को मिला जिसमें लेखक के दस्तखत नहीं थे। पत्र में लिखा था—"आपके द्वारा अखबारों में दिये गये विज्ञापनों से मालूम हुआ कि आप मेरी खोज कर रहे हैं। मैं अब मरी जैसी ही हूँ। जब मैंने यह देखा कि लता को मेरी मदद की जरूरत नहीं रही तो उसे मदद भेजना मैंने बन्द कर दिया था। उसे यदि किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो तो कृपाकर इसी प्रकार अखबारों में विज्ञापन प्रकाशित कराकर मुझे खबर दें। उचित प्रबन्ध कर दूँगी। आपकी आज्ञा का मैं अक्षर-अक्षर पालन कर रही हूँ। लता अब बड़ी हो गई है। ऐसे समय मेरा शरणगाँव आना खतरे से खाली नहीं, यह आप भी मानेंगे। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं लिखना चाहती।"

पादरी ने यह पत्र दुर्गाबाई को दिखाया भी नहीं और न उसका मज़मून ही बताया। उसने फिर दूसरा विज्ञापन अखबारों में दिया और उसमें कुमार के नाम का उल्लेख कर कर्ज के अदा करने का जिक्र किया।

उस विज्ञापन को पढ़ते ही सुन्दरी वह अखबार लेकर मोहन के घर गयी। मोहन के घर आना-जाना उसने शुरू कर दिया था। मोहन ने अपने वचन का पालन किया था। उसी तरह वह भी अपने वायदे पर कायम रही थी। दो निस्सीम मित्रों के नाते ही वे परस्पर मिला करते थे। सुन्दरी को इसी में सुख मिल रहा था। एक तरह से वह एक प्रकार का यह 'निष्काम कर्मयोग' का व्रत आचरण में ला रही थी। मोहन को विज्ञापन दिखाकर वह बोली—"इस विज्ञापन को पढ़कर तुम क्या सोचते हो ?"

"मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।"—मोहन बोला।

"तुम्हे याद है ?"—सुन्दरी बोली—"उस समय जब पहिले तुम मेरे घर आया करते थे तो मेरे सामने नोटों के बंडल फेंक जाते थे..."

"हाँ, हाँ। याद आता है"—मोहन बोला—"पैसों के लिए ही तुम जैसी औरतें मर्दों के पीछे पड़ जाती हैं, ऐसी मेरी धारणा थी।"

"वह धारणा अब तो नहीं है न ?"—सुन्दरी बोली। मोहन हँस पड़ा, पर बोला नहीं। सुन्दरी आगे बोली—"जिस दिन, मैंने तुम्हें वह खबर दी थी, उस दिन तुमने हजारों रुपयों के नोट मेरे सामने फेंक दिये थे। याद है न ? मैंने उन नोटों को तुम्हारे सामने हाथ तक नहीं लगाया था, पर तुम्हारे जाने के बाद मैंने उन्हे समेट कर अपने पास रख लिया और अपने साथ उन्हे घर भी ले गई थी। याद है ?"

"याद नहीं आता।"—मोहन बोला—"उस दिन मैं नशे में था।" कुछ देर सोचकर बोला—"हाँ, अब याद आ रहा है कि मैंने कुछ नोट तुम्हारे सामने फेंक दिये थे। पर आगे चलकर मैं वह बात बिल्कुल ही भूल गया।"

"मैं उन्हे क्यों ले गई ? आपका क्या ख्याल है ?"

"रुपयों के लालच से तो तुम निश्चय ही नहीं ले गई होगी, यही तुम कहना चाहती हो न ?"

"नहीं" सुन्दरी बोली—"रुपयों के लालच से ही मैं उन्हे समेट कर

ले गयी थी। हर वह लालच मेरे अपने लिए नहीं था···" इतना कह कर वह चुप हो गई।

"फिर किसके लिए था ?"—मोहन ने पूछा।

"तुम्हारे भाई के लिए !" मोहन का चेहरा एकदम उतर गया।

यह देख सुन्दरी बोली—"उसी समय तुम्हारा भाई बी० ए० में फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया था। बैरिस्टर होने विलायत जाना चाहता था। जब मुझे उसकी इच्छा का पता चला और यह मालूम हुआ कि रुपयों के अभाव मे वह अपनी इच्छा पूरी नही कर सकता तब एक सज्जन के जरिये मैं उसे २५ हजार रुपये देने को तैयार हो गयी। मैंने उसे ऐसा वचन भी दे दिया। पर उस समय जब कि मैंने वचन दिया था, यह कल्पना मेरे मन मे नहीं आई थी। बाद मे आई उस दिन आई जिस दिन तुम रुपये फेंक गये थे। उस दिन मैंने सोचा था कि जिसके ये रुपये हैं उसी के काम में ये लगा दिये जायें। समय-समय पर तुम मुझे जो रुपये दिया करते थे उन को भी मैंने अपने घर मे एक तरफ रख दिया था। जब ये सारे रुपये इकट्ठा करके देखा तो २५ हजार निकले और कुमार को विलायत जाने और बैरिस्टरी पढ़कर आने के लिए भी इतनी ही रकम की जरूरत थी।"

"अब समझा मैं···" मोहन बोला—"बैरिस्टर होकर हम जैसे गुनाहगारो के पीछे हाथ धोकर पड़ जाने वाला मेरा यह भाई अब काफी मालदार हो गया है। अब वह यह कर्ज लौटा देना चाहता है। यही न ?'

"हाँ।" सुन्दरी बोली—"अब मैं क्या करूँ ?"

"यह मुझसे क्यो पूछ रही हो ?"—मोहन बेफिक्री से बोला—"वे रुपये मैंने तुम्हे दिये थे। अब उससे मेरा कोई सम्बन्ध नही रहा।"

"नहीं !" सुन्दरी बोली—"वह तुम्हारी अमानत थी मेरे पास। तुम्हारे भाई को वे रुपये यदि मैं न देती तो इसके पहले ही वे मैं तुम्हें लौटा देती। मैंने कुमार को वे सिर्फ इसीलिए दिये कि वे तुम्हारे थे। हाँ यह सच है कि तुम्हारी अनुमति के बिना दिये। पर तुम्हारे ये इसी

लिए दिये।"

मोहन क्षण-भर के लिए स्तब्ध होकर बोला—"ठीक है। वे रुपये मुझे मिल गये, ऐसा उसे समाचार भेज दो। चाहो तो रुपये पाने की रसीद लिख देता हूँ।" पुन: क्षण-भर के लिए रुककर वह बोला—"पर इसके लिए रसीद लिखने की क्या जरूरत? भाई-भाई के लेन-देन में रसीद नहीं ली जाती—जाओ। जैसा तुम ठीक समझो करो।"

क्षण-भर के लिए वह चिन्तित हो गया था। "अच्छा, यह बात है।" वह बोला—"तो कुल मिलाकर बात यह हुई कि मेरे ही रुपये से मेरा वैरी तैयार हो रहा है?"

"वैरी!" सुन्दरी ने पूछा—"वैरी कैसा?"

"तुम नहीं जानती—" मोहन बोला—"बड़े ऊधम मचा रखे हैं मेरे इस बुद्धिमान भाई ने। वकालत करना छोड़कर वह अब पुलिस के साथ गुनाहों का पता लगाने लगा है। यही क्यों न कि मेरे ही पीछे हाथ धोकर पड़ गया है। मेरा एक वैरी था जो तुम्हारी कृपा से अब खतम हो गया, इसीलिए मैं निश्चिन्त हो गया था। वह दो प्रतिद्वंद्वियों में स्पर्धा थी—कौन कितना पुरुषार्थ करके दिखाता है इसकी होड़ लगी थी हम दोनों में—उस होड़ में एक प्रकार का आनन्द था, ईर्ष्या थी। उस होड़ के लिए हम दोनों कमाई रगड़कर लड़ते थे।। अगर मेरे पिता की मृत्यु के लिए वह जिम्मेदार न होता तो ऐसी परिस्थिति कभी पैदा न होती। परन्तु पिता को उसकी मृत्यु के समय मैंने वचन दिया था कि जिसके कारण उनको फाँसी मिल रही है उसका मैं खून करूँगा। आज मैं केवलमात्र की अकड़न महसूस कर रहा हूँ। बराबरी का वीर हुए बिना लड़ाई में जोश नहीं आता। अभी भी मैं कितने ही ऊधम मचा रहा हूँ, पर अब उसमें वह मजा नहीं आता—वह आनन्द नहीं आता। अब मेरा यह भाई आ गया है। उसने मेरे हर काम में हाथ डालना शुरू कर दिया है। वह हस्तक्षेप कर रहा है।" पुन: क्षण-भर के लिए वह रुका और बोला—"क्या मजे हैं! मैंने अपने ही हाथों से अपने

भाई को अपना वैरी बना लिया है !"

उसके ये उद्‌गार सुनकर सुन्दरी के छक्के छूट गये। दो जगह के दो धागे उसे खीच रहे थे। लता के वात्सल्य के कारण कुमार के प्रति उसका आकर्षण, और इधर मोहन के प्रति स्वयं उसका आकर्षण। उसे लगा मोहन निठुरता से कही कुमार की जान का भूखा तो नही हो जाएगा ? वह बोली—"रामायण तो याद है तुम्हे ? मेरी लता की याद है तुम्हें ? तुम अब सब कुछ जान गये हो—"

"हाँ-हाँ मुझे सब याद है।"—मोहन बोला—"तुम्हे डरने की जरूरत नही। जब तक वह स्वयं मेरे प्राण लेने पर उतारू नही होगा, तब तक उसे मुझसे कोई भय नहीं। पर यदि खम ठोककर मुझ से लड़ने के लिए वह अखाड़े में कूद पड़ा तब अलबत्ता मैं अपनी माँ का उपदेश अमल में लाऊँगा।"

"तुम्हारी माँ का क्या उपदेश ?"—सुन्दरी बोली।

"हाँ-हाँ मेरी माँ का उपदेश।" एकदम उठकर कमरे मे चहल-कदमी करता हुआ मोहन बोला—"यह बहुत पुरानी बात है। गीता पर प्रवचन करती थी मेरी माँ—सुनता हूँ आज भी करती है। मेरे पीछे पड़ी रहती थी कि मैं प्रवचन करते मे बैठूँ और उसकी बकवास सुनूँ पर मैं नही बैठता था और न सुनता था। परन्तु उन दिनो भूल से जो कुछ शब्द मेरे कानो मे पड़ गये थे वे आज भी मुझे याद आ रहे हैं। कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि यदि भाई भी समरभूमि में सामने आ जाय तो अपने रिश्ते को भूल कर उससे लड़ना चाहिये और उसके प्राण ले लेना चाहिए। लड़ाई में अपने काका, मामा, नाना आदि को सामने देखकर अर्जुन घबरा उठा था। उस समय एक वाक्य माँ कहती थी —"तस्मात उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुक्ष्व राज्यं समृद्धि"—यही माँ का उपदेश—सिर्फ यही एक उपदेश मेरे ध्यान में रह गया है। इसीलिए यदि वैसा कोई मौका आ ही गया तो मैं भाई के रिश्ते को भूल जाऊँगा—यह मोहन भाई को भाई नही कहेगा।"

गीता के उपदेश का मोहन द्वारा किया गया विन्यास सुनकर सुन्दरी स्तंभित हो गई। उसने निश्चय किया कि कुमार से एक बार मिलकर वह उसे सावधान कर देगी।

मोहन से विदा लेकर वह चल दी। उसने पादरी को पत्र लिखा—"कुमार को विलायत जाकर बैरिस्टरी पढ़ने के लिए जो रुपये दिये गये थे वे मेरे नहीं थे। वे जिस व्यक्ति के पास से मुझे मिले थे, वह व्यक्ति उन रुपयों को वापिस नहीं लेना चाहता। यही मान लीजिए कि भाई ने भाई को रुपये दिये। विश्व-बंधुत्व की कल्पना जिस तरह हमें परायी नहीं, उसी तरह दुर्गाबाई को भी नहीं। यह कर्ज अदा कर दिया गया है, ऐसा समझ लीजिए। कुमार को यदि ठीक न लगता हो तो वह यह रकम किसी विद्यार्थी को इसी प्रकार के काम के लिए दे दे, जिससे कि ऐसा हो जाएगा कि जिसने रुपये उसे दिये थे उसे उसने वे लौटा दिये।"

यह पत्र पादरी ने दुर्गाबाई को दिखाया। प्रकट है कि उस पत्र पर हस्ताक्षर किसी के न थे।

दुर्गाबाई का हृदय भर उठा। वह बोली—"तो दुनिया में ऐसे लोग भी हैं? कृपा कीजिए और इस व्यक्ति से मेरे कम-से-कम एक बार तो मुलाकात अवश्य करा दीजिए। उस मुलाकात की बात मैं अत्यन्त गुप्त रखूँगी। परन्तु इस व्यक्ति से मुलाकात हुए बिना मेरे मन को चैन नहीं मिलेगा, मुझे सन्तोष नहीं होगा।"

पादरी बाबा ने पुनः एक बार कोशिश करके देखने का दुर्गाबाई को आश्वासन दिया।

२२

कुमार की प्रेक्टिस बम्बई मे बडे धडल्ले से चल रही थी। परन्तु अदालत मे मुकदमो की पैरवी करने के बजाय गुनाहो का पता लगाने की ओर ही उसका झुकाव अधिक था। किसी गुनाह की खबर कान मे पडते ही उसको तलाश और जांच-पडताल करने के लिए वह अपने आप ही आगे बढ जाता था। पुलिस वालो को उससे बडी मदद मिलती थी। उसका यह 'शक्कीपन' उसके साथी बैरिस्टरो और बड़े-बडे वकीलो के लिए मजाक का एक विषय हो बैठा था।

कुमार को अन्य गुनाहो के साथ उन गुनाहो की भी खबर मिलती थी जो मोहन द्वारा किये जाते थे, परन्तु मोहन के गुनाह करने का तरीका अन्य गुनहगारो की अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न होने के कारण कुमार को उसका पता न लग पाता था। बात यह थी कि गुनाहो का पता लगाने के जो सिद्धात और तरीके कुमार ने निश्चित किये थे, वे मोहन द्वारा किये गये गुनाहो का पता लगाने के लिए बेकार थे। फिर भी उसका ध्यान उन गुनाहो की ओर आकृष्ट हो गया था और वह अपने सिद्धान्त और तरीको मैं आवश्यक सुधार करने लगा था।

केशवलाल की मृत्यु के बाद मोहन की दृष्टि उसके कुछ पिट्ठुओं की ओर मुड़ गयी थी जिसकी मदद से केशवलाल ने समूची बम्बई पर अपना आतक जमा रखा था। ऐसे कुछ लोगो को उसने अपने कब्जे मे कर लिया था। भीखू की इमानदारी ने भी उसके मन को प्रभावित किया था। उसे यह भी मालूम था कि ईमानदार होने के साथ-साथ वह

सेवाग्राम में समय-समय पर रुपया भी ऐंठा करता था। मोहन ने सोचा कि यदि वह काम कर देता है और बदले में उसका पारिश्रमिक चाहता है तो वह उसे मिलना चाहिए। पारिश्रमिक मिल जाने पर उसे फिर कोई शिकायत नहीं रहेगी और वह हमेशा एक ईमानदार सेवक की तरह अपना हर काम करता रहेगा। इसलिए उसका ख्याल था कि यदि भीकू भी किसी तरह उसके दल में मिल जाय तो बड़ा अच्छा होगा।

सुन्दरी और मोहन का परिचय दिन-प्रति-दिन स्नेह में परिणित हो रहा था। मोहन के लिए वह एक 'निष्काम कर्मयोग' जैसा था। जीवन की कोमलता के अभाव की पूर्ति करने के लिए वह रोज सुन्दरी के घर घड़ी दो घड़ी के लिए बैठ आता था। उसने पहिले कुछ दिन सुन्दरी को रुपये देने की कोशिश की, पर सुन्दरी ने इसके लिए उसे इस तरह फटकारा कि फिर उसे रुपये देने का विचार ही उसके दिमाग में न आया। रुपये वह चाहती न थी, यह बात नहीं, पर आतंरिक स्नेह में रुपयों का व्यवहार हो नहीं सकता, यह उसे दिखा देना था। जब पुरुष और स्त्री में पति-पत्नी का नाता होता है तब पति पर पत्नी के लिए कम-से-कम अन्न और वस्त्र देने की जिम्मेदारी रहती है। यहाँ मोहन पर वह जिम्मेदारी भी नहीं थी। उसी तरह पति-पत्नी के बीच जो एक वैषयिक नाता होता है वह भी यहाँ नहीं था। वैषयिक भावना से सुन्दरी को भी घृणा हो गई थी। उस भावना के कारण मानवी मन किस तरह पतित हो जाता है, मालिकी के हक का ज्ञान प्राप्त होने से संशय का बीज किस तरह जम जाता है, उसके कारण प्रेम की भावना मत्सर में किस तरह रूपांतरित हो जाती है इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभव उसे प्राप्त हो जाने के कारण पुनः उस प्रकार की वैषयिकता के चक्र में न फँसने का उसने भी पक्का निश्चय कर लिया था।—और इसीलिए उन दोनों की इस 'प्लटानिक' मित्रता में कभी कोई बाधा न आई— इसीलिए सुन्दरी के अनुभव पर भरोसा कर मोहन ने भीकू को अपने

बम्बई के नये शासन में कुमार सरकारी वकील नियुक्त हो गया। उस जैसे नौजवान बैरिस्टर को इतना बड़ा अधिकार एकदम दे देने के कारण वह नियुक्ति सभी के लिए चर्चा का विषय हो बैठी थी, परन्तु कुमार उस ओर कोई ध्यान न देता था। दुनिया के, कम-से-कम बम्बई से, गुनाह और गुनहगारों की वृत्ति को नष्ट कर देने की उसकी अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए यह अधिकार उसके लिए बड़ा सहायक होने लगा था।

उसकी आर्थिक स्थिति अब काफी अच्छी हो गयी थी। इसलिए उस ने अपनी माँ को बम्बई बुला लिया। दुर्गाबाई का सारा जीवन गाँव में ही व्यतीत होने के कारण बम्बई आना उसकी जान पर आ गया था। उसे लाने कुमार स्वयं शरणगाँव गया था।

पहिले वह आना नहीं चाहती थी, पर कुमार बोला—"सारा जीवन तुमने दरिद्र-नारायणों की सेवा में बिताया है। अब थोड़ा विश्राम कर लो—जरा मेरे सुख की ओर भी देखो—मेरे सतोष की चिंता करो। तुम्हें ऐसे कष्ट करते देख मेरे मन को सतोष नहीं मिलता। आज तक तुमने नौकरी की है। अब थोड़ी पेंशन के सुख का भी अनुभव लेकर देख लो।"

दुर्गाबाई हँसकर बोली—"सरकारी नौकरी करते ही तुम्हें पेंशन याद आने लगी। ये आसार अच्छे नहीं। ब्रिटिश शासन की इस पेंशन की योजना के कारण बड़े-बड़े पुरुषार्थी मरण-प्राय हो गए हैं अथवा मर गए हैं। प्रत्येक सरकारी नौकर के कानों में, उसकी नियुक्ति होते ही चिल्ला-चिल्लाकर यह बताया जाता है कि पचपन वर्ष की अवस्था में वह बूढ़ा हो जायगा। बेचारा सरकारी नौकर इसी मंत्र का जाप करता रहता है। पचपनवां वर्ष हमेशा उसे आँखों के सामने दिखता रहता है और उस पचपनवें वर्ष की याद करते-करते वह बूढ़ा हो जाता है। पुराना इतिहास देखो, अस्सी वर्ष के लड़ाके समर-भूमि में जाकर लड़े

है। पुराण-काल के भीष्म और द्रोण जैसे पितामहों की बात ही छोड़ दो, परन्तु इतिहास-काल के गोपालमामा, परशुराम पंत अमात्य जैसे पितामह हमारी नजरों के सामने हैं। विदेशों में देखो—वहाँ के राजनीतिज्ञों में सत्तर-अस्सी वर्ष के लोग ही अधिक दिखाई देते हैं। फिर हमीं क्यों पचपन में बूढ़े और निष्क्रिय हो जायें—हम क्यों थक जाएँ—" कुमार लज्जित हो गया। यह देखकर वह बोली—"काम करते हुए मेरा जीवन बीता है। काम करते हुए ही मुझे यह शरीर छोड़ना चाहिए। भारतीय युद्ध की समाप्ति के बाद कृष्ण जी जब द्वारका जाने लगे तो कुंती से मिलने गए। उस समय कुन्ती ने कृष्ण से क्या माँगा था, तुम्हें याद है न? वह बोली—"भगवान हमें संकट दो। जब हम पर संकट थे, उस समय तुम छाया की तरह हमारे रक्षक थे। उन संकटों के दूर होते ही अब तुम द्वारका जाने लगे। इसीलिए मैं कहती हूँ कि मुझे सुख और संतोष का जीवन नहीं चाहिए।"

"पर मैं अपनी माँ को अपने पास चाहता हूँ।"—कुमार बोला, "इतने साल मैं अपनी माँ से दूर रहा। अब मैं तुम्हारी नहीं सुनूँगा। जो काम करना चाहती हो बम्बई में हो करो। वहाँ जैसे अत्यधिक वैभव है उसी तरह अत्यधिक दरिद्रता भी है। बम्बई के दरिद्र-नारायणों की सेवा तुम सहज कर सकोगी।

पुत्र की यह आस्था-भरी प्रार्थना दुर्गाबाई से अस्वीकार नहीं की जा सकी। जब वह कुमार के साथ बम्बई के लिए रवाना होने लगी तो लता रो पड़ी। वह बेसहारा थी। अभी तक यद्यपि वह मिशन-हाऊस में रह रही थी, फिर भी उसका सारा समय दुर्गाबाई के घर ही बीतता था। पहिले से ही उसने गाँव में अन्य किसी से स्नेह नहीं जोड़ा था। कुमार से उसका प्रेम था। कुमार से उसका विवाह होगा ऐसी उसे आशा थी, पर उस विषय का जिक्र कोई भी न कर रहा था, इसलिए वह तनिक भीरु-सी हो गयी थी। समाज में कुमार का दर्जा अब बहुत बड़ा हो गया था, इसलिए उसे लग रहा था कि वह उससे दूर हो रहा है।

वस्तुस्थिति यह थी कि इस विषय में दुर्गाबाई और पादरी में पहले ही बातें हो चुकी थीं। जब पादरी को पता चला कि दुर्गाबाई बम्बई जा रही हैं, तो उसने सोचा कि उसकी और सुन्दरी की एक बार मुलाकात करा दी जाय। दुर्गाबाई ने लता को अपनी बहू बनाने का निश्चय कर लिया था। इसलिए पादरी को लगा कि लता ने किस कुल में जन्म लिया है, यह दुर्गाबाई को बता देना अब आवश्यक हो गया है। उसने दुर्गाबाई को वचन दिया कि उसके बम्बई पहुंचते ही वह सुन्दरी से उसकी भेंट करा देगा।

इससे पहिले उन दोनों ने यह तय किया कि लता भी बम्बई में दुर्गाबाई के साथ रहे। वह अब छोटी नहीं थी और शरणगांव में उसकी चिंता करने वाला कोई दूसरा मनुष्य नहीं था। मिशन-हाउस में रहना उसे कठिन हो रहा था, यह पादरी देख रहा था। आज नहीं तो कल कुमार से उसका विवाह होगा, यह भी निश्चय था। इन सब बातों का विचार कर पादरी ने लता को दुर्गाबाई के साथ बम्बई भेज दिया।

चूंकि कुमार का सामाजिक दर्जा अब काफी बड़ा हो गया था, इसलिए अपने रहने के लिए उसे बड़े बंगले की आवश्यकता हो गई थी। जिसने अपनी सारी जिंदगी एक-छोटी-सी झोपड़ी में गुजारी थी उस दुर्गाबाई को मालाबार हिल का वह विशाल बंगला बड़ा 'सुनसान-सा' लगने लगा। बम्बई आते समय उसने सोचा कि बम्बई पहुंचते ही वह अपना नित्य का कार्य वहाँ शुरू कर देगी, परन्तु यह भी न हो सका। वह जिस बंगले में रहती थी वह गरीबों की बस्ती से काफी दूर था।

फिर भी वह अपने ढंग से कोशिश करके देख रही थी। यद्यपि इस समय उसके भाग्य में अमीरी आ गई थी, फिर भी उसने अपना पुराना रहन-सहन नहीं बदला था। सब प्रकार की अनुकूलता होते हुए भी वह अभी तक मोटी खादी के वस्त्र ही पहिनती थी। उसी तरह रोज चरखे पर सूत कातती थी। कुमार और लता को रोज उसी तरह कर समझाती थी।

जैसा तय हुआ था, एक दिन पादरी बम्बई आया और दुर्गाबाई से मिला। उससे मिलने से पहले वह सुन्दरी से मिल आया था। दुर्गाबाई और सुन्दरी, दोनों की एकांत में भेंट कराने के लिए बम्बई के मिशन हाऊस का एक कमरा उसने निश्चित किया था। वह सुन्दरी को सूचना थी। मोहन उसके घर कब आ धमकेगा, इसका कोई ठिकाना न रहता था, इसीलिए उसने पादरी से ऐसी प्रार्थना की थी।

लता की बड़ी बहिन को अपने सामने देखते ही दुर्गाबाई के हृदय को पहले बड़ा धक्का लगा। इस रहस्य को इतने सालों तक छिपाकर रखने वाले पादरी के निश्चय और आत्मीयता की उसने मन ही मन जितनी सराहना की उतना ही उसे आश्चर्य भी हुआ। उसने अपने मन में विचार किया। उस समय उसके मन में जो भावना आई थी उससे जब उसने पादरी की वृत्ति की तुलना की तो उसे अपने आप पर ही शर्म आई "दैवायत्त कुलेजन्मं मदायत्त तु पौरुषम्," ऐसा कहने वाले कर्ण की उसे याद हो आई। किसी विशेष कुल में जन्म लेना सुन्दरी के हाथ में न था। उस कुल-परंपरा के अनुसार जो परिस्थिति उसकी किस्मत में बँध गई थी, उस परिस्थिति में अपनी बहिन को बचाने के लिए उसने जो प्रयत्न किये, जो स्वार्थ-त्याग किया, बहिन के जीवन पर अपने पूर्व इतिहास का प्रभाव न पड़े, इसलिए वात्सल्य से बेचैन हो रहे अपने मन को उसने जिस तरह काबू में रखा, इसकी पूर्ण कल्पना जब दुर्गाबाई को हुई, तब उसके कुल की याद आने की अपेक्षा उसके शील पर ही उसे अभिमान होने लगा।

एक विशेष परिस्थिति में लालन-पालन होने के कारण लता पर उसकी कुल-परंपरा का रत्ती-भर भी परिणाम नहीं हुआ था, यह दुर्गाबाई को स्पष्ट दिख रहा था, इसलिए कुल-परंपरा के कारण कुछ मनुष्यों के बारे में अन्याय हो रहा है, यह विचार उसके मन में आए बिना न रहा।

सुन्दरी कह रही थी—"मेरा दिल टूट रहा था, पर मैं लता के

नहीं मिली। पादरी बाबा की सख्त हिदायत के कारण उसे देखना भी मैंने टाला। मेरा मन अनेक बार बेकाबू हो उठा था, पर हर बार ये पादरी बाबा मुझे जगा देते थे। इसीलिए लता आज जैसी है वैसी वह हो पाई। उसे कभी पता न चलना चाहिए कि मैं उसकी बहिन हूँ। यदि उसे यह मालूम हो गया तो वह झुलस जाएगी। तुम्हारे उपदेश के कारण उसका मन जिस तरह का बन गया है मन की उस अवस्था में वह कुमार से विवाह करने को भी तैयार न होगी··"

"यह सच है!" दुर्गाबाई बोली—"यदि उसे यह मालूम हो गया तो वह हमें और सभी को छोड़कर चल देगी। इस रहस्य का तो किसी को भी पता नहीं चलना चाहिए। उसका यह इतिहास काल के उदर में अदृश्य ही रहना चाहिए··"

"पर मेरा कुल ?"—सुन्दरी गद्गद होकर बोली।

"पगली लड़की !" दुर्गाबाई ने कहा—"मैं गीता की अनुयायिनी हूँ यह तुम भूल रही हो। "स्त्रियो वैश्या: तथा शूद्रा: तेपि यान्ति परमां गतिम्" कहने वाले गीताकार की मैं भक्त कहलाती हूँ। "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः" कहने वाले भगवान के वाक्य को क्या मैं बट्टा लगाऊँगी। विधर्मी के घर लता बढ़ी, पर उसने अपना धर्म नहीं छोड़ा। वहाँ वह हिन्दू-धर्म का ही पालन करती थी। ईसा का धर्म और कृष्ण का धर्म इन इन दोनों धर्मों में कम-से-कम मुझे तो कोई भिन्नता नजर नहीं आती। ईसा के अनुयायी और कृष्ण के अनुयायी अपने-अपने धर्म के थोथे अभिमान के कारण एक दूसरे से भले ही लड़ते हों, पर मैं यही मानती हूँ कि ईसा और कृष्ण अलग-अलग नहीं। स्थान और काल के कारण उनके उपदेशों में शायद कुछ फर्क दीख पड़ता हो, पर उन भेदों में जो समन्वय है उसे देखने की बुद्धि भगवान ने मुझे दी है और इसीलिए मुझे लगता है कि मनुष्य की वृत्ति उसके जन्म-धर्म पर अव-लंबित नहीं। मूल धर्म की दृष्टि से यदि देखें तो तुम्हारी बहिन ब्राह्मण से भी बड़ी ब्राह्मण है" यह सुनकर सुन्दरी की आँखों से खुशी के आँसू

पड़े गये । दुर्गाबाई ने उसे हृदय से लगा लिया और माँ की म
का हाथ उस पर फेरती हुई वह बोली—"और तुम इतनी बड़ी हो
भावनों में फिर भी बचनीय हो बैठी हो । कितना अलौकिक यह त्य
है तुम्हारा । ऐसा असाधारण त्याग करने का अवसर भगवान ने
नहीं दिया, इसलिए मुझे तुम से ईर्ष्या होने लगी है ।"

दोनों की ही आँखें आँसुओं से भर आई थी । दोनों के ही हृ
एक विशेष प्रकार की भावना से गीले हो उठे थे ।

सुन्दरी को यह अनुभव पहिली बार ही हो रहा था । माँ के प्यार
यह परिचित न थी । दुर्भाग्य से किसी की 'माँ' होने का भाग्य भी उ
प्राप्त न हुआ था । वह जिस की माँ हो बैठी थी, उस अपनी बहिन
उसने स्वयं अपने से दूर रखा था । जिन पुरुषों के साथ उसका सा
जीवन व्यतीत हुआ था, वे दैत्यों में गिने जाने योग्य थे । उन दैत्यों
राज्य में प्रह्लाद की तरह अपने मन की वृत्ति को सँभालकर वह आ
तक रही थी । यह दीख पड़ने के कारण ही दुर्गाबाई के हृदय में उसके
प्रति इतना आदर जाग उठा था ।

उस दिन से उन दोनों की मित्रता बढ़ती गई । सुन्दरी ने अपना
रहन-सहन बदल दिया । पोशाक बदल डाली । वह दुर्गाबाई के घर
बार-बार आने जाने-लगी । अपनी प्रिय बहिन के सहवास का सुख भी
छुपे-छुपे उसे लेते बनने लगा ।

तीनों का मिलन हुआ । सब को यही लगा कि सुख की समृद्धि
हुई ।

भीकू के मिल जाने के बाद से मोहन को एक प्रकार से आराम हो
गया था। केशवलाल की मृत्यु के बाद से दूसरा कोई प्रतिद्वन्दी उससे
होड़ लेने के लिए मैदान में न उतरा। इस कारण उसकी ईर्ष्या की
तेजी मंद पड़ गई थी। उसे लगने लगा कि अब लड़ूँ किससे? उसने
काफी दौलत पैदा कर ली थी, इसीलिए उसके धंधे में अब तेजी नहीं
रह गयी थी। सब काम को स्वयं करने की पहली वृत्ति छोड़कर, बहुत
से काम अब भीकू के जरिये कराने लगा था।

काम भी पहिले की अपेक्षा अब कम हो गये थे। मोहन जानता था
कि भीकू को अपने कब्जे में रखने के लिए उसकी मुट्ठी बार-बार गरम
करते रहने की जरूरत थी। इस काम में उसने केशवलाल जैसी कंजूसी
कभी नहीं दिखाई। अतएव भीकू खुश था। इस बारे में उसे मोहन से
कोई शिकायत न थी।

सुन्दरी के घर वह नियमित रूप से आता-जाता था। उसे स्पष्ट दिख
रहा था कि कुछ दिनों से सुन्दरी की वृत्ति में परिवर्तन हो रहा है। पहिले
की शान-शौकत सुन्दरी ने अब बिलकुल छोड़ दी थी। जब से वह दुर्गा-
बाई के घर जाने लगी थी तब से उसने अपना सारा रहन-सहन ही बदल
डाला था। लता को उसने अपना परिचय नहीं दिया था। उसे अपना
परिचय देने की उसकी कभी की भी नहीं चाहता था। उसे आश्चर्य
की सिर्फ इस एक बात से ही संतोष होने लगा था कि वह उसके
इरादा में रह सकती है और रोज उसकी नजरों के सामने रहती है।

सुन्दरी का दुर्गाबाई के घर आना जाना मोहन से छिपा हो
बात नहीं थी, परन्तु मोहन ने अपनी बातचीत के दौरान इस बात
कभी भी कोई जिक्र नही किया था। सुन्दरी की वृत्ति मे जो परिव
हुआ है वह उसकी माँ के कारण ही हुआ है, यह मोहन जानता था।

पुरुषार्थ की परमावधि हो जाने के कारण मोहन को जो ग्लानि
गई थी उसका भीकू पर परिणाम हो रहा था। कोई काम दिखाये बि
मोहन से रुपये ऐंठना उसे सभव नही था और इधर काम कम हो
थे। भीकू रुपयों के पीछे पागल था। पहिले उसे लगातार जितने क
मिलते थे उतने काम उसे अब नही मिल रहे थे। यह देख उसे लग
लगा कि रुपये पैदा करने का अब कोई दूसरा उपाय खोजना चाहिए
इधर-उधर जो गुनाह हो रहे थे, उनका कर्त्ता कौन है, इसका पुलिस
यद्यपि पता नही चला था, फिर भी उस गुनहगार का पता देने वाले
या उसे रंगे हाथ पकड़वा देने वाले को एक बड़ा इनाम मिलेगा, ऐ
घोषणा पुलिस ने कर रखी थी। उस इनाम के लालच से भीकू एक दि
पुलिस अफसर के पास गया।

इसके लिए एक जरा-सा बहाना भीकू को मिल गया था। जा
किस कारण से मोहन भीकू पर उस दिन नाराज था। उसके द्वा
बार-बार माँगी जाने वाली लम्बी रकमें मोहन को भी दुस्सह हो उ
थी। सारी पुरानी बातें कुरेदकर मोहन उस पर बिगड़ उठा था। त
मोहन पर झल्लाकर वह रोषावेश मे सीधा पुलिस थाने जा पहुँचा था

उसका सारा बयान कुमार ने ही लिया था। भीकू के ही कहने प
एक व्यापारी के घर पर छापा डालने का मोहन ने निश्चय किया था
वहाँ वह कब जायगा, कैसे जायगा और क्या-क्या करेगा, इसकी अथ
इति तक सारी खबर उसने पुलिस को दे दी। मोहन द्वारा किये ग
पहिले के सारे गुनाहों का उसने पूरा-पूरा हाल बताकर, बेनावसाब की
हत्या उसने कैसे की, इसका भी उसने पुलिस के सामने विस्तारपूर्वक
वर्णन किया। पहिले के सारे गुनाहों को साबित करने के लिए उसने

अनेक महत्वपूर्ण प्रमाण पुलिस के हाथ में दे दिये।

इस काम के लिए उसे माफी देने का आश्वासन दिया गया था परन्तु इतने से भीकू को सन्तोष नहीं हुआ। वह बोला—"आपको इसकी कोई कल्पना नहीं कि मोहन की नजर कितनी तीखी है। उसके दांव-पेच के जाल बहुत दूर तक फैले हुए हैं। कल आप उसे गिरफ्तार कर लेंगे, पर उसे यह पता लगे बिना न रहेगा कि मेरे कारण ही वह गिरफ्तार हुआ है, और यह पता लग जाने पर वह यदि जेल में भी होगा, तब भी हर कोशिश से मेरी जान लिये बिना न रहेगा।"

"तुम बिलकुल मत डरो।" कुमार बोला—"मेरे घर आकर रहो।"

"नहीं-नहीं।" भीकू बोला—"इससे तो उसका शक और अधिक बढ़ जायगा। उसके बहुत से पिट्ठू हैं। उनमें से कौन किस तरह आकर मेरा खून कर देगा, यह कहा नहीं जा सकता। आप ऐसा करें कि मुझे भी जेल में बन्द कर दें। तभी मैं सुरक्षित रह सकता हूँ।

"अरे भाई, कानून भी तो कुछ है न ?" पुलिस अधिकारी बोला—"गुनाह किये बिना तुम्हें जेल में कैसे बन्द कर दें। अकारण ही तुम्हें अगर जेल में ठूँस दें तो क्या हम ही गुनहगार न हो जाएँगे ?"

"तो फिर ऐसा कीजिए कि मेरा बयान मुझे लौटा दीजिए।" भीकू एकदम झल्लाकर बोला—"मैंने आप से नहीं कहा—अगर कहा भी है तो वह सब झूठ है। लाइए, मेरा यह बयान मुझे लौटा दीजिए। आप के वह किसी काम का नहीं, क्योंकि वह सब झूठ है।" ऐसा कहकर वह कुमार के हाथ से कागज छीनने की कोशिश करने लगा। यह तो प्रकट ही था कि वे कागज उसे वापिस न मिलते, परन्तु भीकू ने उन्हें वापिस लेने के लिए प्राण की बाजी लगा दी। वह एकदम कुमार पर टूट पड़ा। यह देखकर कि बात बढ़ रही है, पुलिस अफसर ने घन्टी बजाई। इसी समय भीकू ने कुमार को एक जोर का घूँसा मार दिया। वह चिढ़ कर दूसरा घूँसा भी मार रहा था कि सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया।

पुलिस के पकड़ते ही भीकू एकदम जोर से हँस पड़ा। तब कहीं

कुमार के ध्यान में आया कि भीकू ने यह सब क्यों किया। सारी घटना इतनी जल्दी हुई थी कि भीकू ने किस उद्देश्य से यह मारपीट की यह उसके पकड़ लिये जाने तक कुमार के ध्यान में नहीं आया था।

अब भीकू को जेल में रखना सुगम हो गया था—भीकू का भी मन अब निर्भय हो गया था।

जिस स्थान पर डाका डालने की योजना मोहन ने बनाई थी, उसका पूर्व-समाचार मिल जाने के कारण पुलिस ने उसे रंगे हाथ पकड़ लिया। बड़े-बड़े गुनाहों को करके भी जो कभी नहीं पकड़ा जा सका था वह एक मामूली डाके में पकड़ लिया गया। यह सचमुच दुर्भाग्य था।

सफलता को पचा लेना बड़ा कठिन होता है। बार-बार सफलता प्राप्त होते रहने से मनुष्य के भीतर आत्मविश्वास की एक प्रकार की व्यर्थ की कल्पना उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण कभी-कभी हिमालय को उठाकर फेंक देने वाला मनुष्य अन्त में मिट्टी के तले दब कर मर जाता है। यही इस समय हुआ। पकड़े जाने के बाद मोहन को जो दुःख हुआ वह यही। जेल में कदम रखते हुए वह बोला—"मैं पकड़ा गया तो इस मामूली डाके में! तुम लोग अभागे हो, बस!"

मुकदमे की तैयारी जोरों से शुरू थी। कुमार इस काम में घर-द्वार की सुध भूलकर बड़ी मेहनत कर रहा था। समाचार-पत्र पुलिस कमिश्नर की अपेक्षा कुमार की ही अधिक प्रशंसा कर रहे थे। यह देख लता अभिमान से फूली नहीं समाती थी। दुर्गाबाई भी उस अभिमान की भागीदारिन थी। गुनाहों को नेस्त-नाबूद कर देने की प्रतिज्ञा करके कुमार ने जो पेशा अख्तयार किया वह सार्थक हो गया, ऐसा उसे लगा।

बेचारी सुन्दरी बड़ी परेशान थी। वह कुछ भी नहीं कह सकती थी। मोहन पर मुकदमा चल रहा था। ऐसे समय यह कहना कि मोहन से उसका कोई संबंध है, उसके लिए संभव नहीं था। दुर्गाबाई और लता जब उस विषय की चर्चा करने लगती, तब वह चुपचाप उसे सुना करती। ... यह उदासीन वृत्ति देखकर, एक बार लता ने उससे कहा—"आप

ऐसी उदासीन-सी क्यों रहती हैं सुन्दरीजी ? आज सारी बम्बई में इस मुकदमे ने तहलका मचा रखा है। सब लोग मुंह भरकर कुमार की तारीफ कर रहे हैं और आप हैं जो कुछ भी नहीं कहती ?"

"मैं क्या कहूँगी ?" सुन्दरी बोली—"मैंने सिर्फ सुना है। इस विषय में मुझे कोई जानकारी नहीं। मैं कुछ समझती भी नहीं। तुम दोनों बातें करती हो, इसलिए मैं भी उनमें शामिल होऊँ और कुछ फालतू बातें जबरदस्ती करूँ, यह मुझे पसन्द नहीं। इसलिए मैं चुप हूँ।"

इस उत्तर से लता को सन्तोष न हुआ। उसे लगता था कि हर व्यक्ति को कुमार की प्रशंसा करनी चाहिए। दुर्गाबाई भी इस मामले में हर बात को बिल्कुल सीधी नजर से देखती थी। व्यर्थ के उत्साह से न बोला करती, तो यह भी लता को अच्छा नहीं लगता था। लता हृदय से बिल्कुल खोखला उठी थी। उसे लग रहा था कि कुमार ने एक बड़ा भारी काम किया है और वह चाहती थी कि हर व्यक्ति यह महसूस करे और उसकी तारीफ में जुट जाये।

पादरी बाबा को उसने यह सारा हाल लिखकर भेजा और कुमार को बधाई देने के लिए जान-बूझकर बम्बई आने का निमन्त्रण दिया।

भीकू को मोहन के दल में भरती करा देने के लिए सुन्दरी को पश्चाताप होने लगा। पहिले से ही वह भीकू की बुद्धि को जानती थी, लेकिन उसने कभी न सोचा था कि वह इतना [illegible] होकर इस तरह मोहन पर उलट जायगा। मुकदमा सुनने वह रोज अदालत जाया करती थी। मोहन के खिलाफ गवाही देने के लिए उसने जब भीकू को कटघरे में खड़ा देखा तो उसे अचानक धक्का लगा। [illegible] था। कुमार को [illegible] देखकर सुन्दरी का हृदय कांप उठा।

मुकदमा सेशन सुपुर्द कर दिया गया। मुकदमा बाद में [illegible] ही अधिक [illegible] होगा। अलग-अलग अदालतों के लिए अलग-अलग मुकदमे दायर किये गये। उनमें से कुछ सेशन [illegible] हुए हैं और किसी किसी के बारे में [illegible]।

बैंगनमान के खून के मामले को अधिक महत्त्व दिया गया था।

इस मामले में दुर्गाबाई की वृत्ति स्थितप्रज्ञ जैसी थी। गुण और दुर्गुण की ओर वह समान दृष्टि से देख रही थी। इस समय उसकी कुमार से शायद ही कभी मुलाकात होती थी। वह अपने काम में बिल्कुल खोया हुआ था। सबूत इकट्ठे करना, गवाहों को सिखा-पढ़ाकर तैयार करना, सबूतों का ठीक से सिलसिला जोड़ना इत्यादि, कामों में वह इतना डूब गया था कि उसे घर का भी होश न रहता था। उसके पास पुलिस के चक्कर लगातार लग रहे थे। बहुत-सा काम उसके घर पर ही होता था। घर के वातावरण में आया हुआ यह बिगाड़ दुर्गाबाई को महसूस हो रहा था। परन्तु 'दुर्जनों का संहार' करने के लिए ये सब बातें आवश्यक होने के कारण वह वातावरण पसन्द न होने पर भी उसे चुपचाप बर्दाश्त कर रही थी।

भीकू की कृतघ्नता यद्यपि चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी, फिर भी उसने एक गुनाह नहीं किया। सुन्दरी के नाम का सम्बन्ध इन सारे मामलों में उसने कहीं भी नहीं आने दिया। सुन्दरी को इसका ही संतोष हो रहा था।

इस सारे मामले का पहाड़ा एक बार दुर्गाबाई के सामने पढ़ दूं ऐसा सुन्दरी के मन में बार-बार आता, पर वह आत्म-संयमन कर लेती। उसे दुर्गाबाई की वृत्ति की यथातथ्य कल्पना थी। इस मुकदमे का रहस्य स्पष्ट करके यदि वह दुर्गाबाई को बता देती, फिर भी दुर्गाबाई के हृदय में मोहन के प्रति कोई सहानुभूति न जागती। सुन्दरी को पूरी तरह मालूम था कि दुर्गाबाई अपना कर्तव्य पालन करने में कितनी कठोर है। इसलिए उस रहस्य को बताकर वातावण को न बिगाड़ने के लिए सुन्दरी ने

समय पर होते रहते, उन्हें वह देखा करता था। जो अखबारों में छपते, उन्हें ध्यान से पढ़ा करता था। इसीलिए उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि ऐसे मुकदमों में अभियुक्त को अपना बयान किस तरह करना चाहिए। बालाराम स्ट्रीट पर जिस औरत को उसने गुण्डों से मुक्त किया था, उस औरत का बयान कुमार ने सुना था। वही औरत आज गवाह के रूप में अदालत में लाई गई थी।

मोहन जब उसके विरुद्ध बयान देने खड़ा हुआ, उस समय मोहन को देखते ही पहिले तो वह औरत घबरा उठी। मोहन की आँख से आँख मिलाने की भी उसे हिम्मत नहीं पड़ रही थी। दोनों में नीचे लिखे प्रश्नोत्तर हुए—

मोहन—"बालाराम स्ट्रीट पर कुछ गुण्डों ने तुम्हें पकड़ रखा था और तुमसे छेड़छाड़ कर रहे थे। उस समय उन गुंडों से तुम्हें किसने बचाया था ?"

औरत—"तुमने।"

मोहन—"ठीक। उस वक्त तुमने मुझे अपने घर चलने की प्रार्थना की थी। सच है न ? मुझे तुम अपने घर क्यों बुला रही थी ?"

वह घबड़ाकर कुमार की ओर देखने लगी। कुमार को कोई सूचना देना संभव नहीं था। मोहन ने उससे फिर डाँटकर पूछा—

"बोलो, तुमने क्यों बुलाया था मुझे अपने घर ? बताओ।"

औरत—"सिर्फ इसलिए कि तुमसे मेरी पहचान हो गई थी। मेरा धा हो है लोगों को अपने घर बुलाने का।"

मोहन—"ठीक। अच्छा अब बताओ मैंने जब तुम्हारे गले में हार डाला था, उस समय तुमने मुझसे क्या पूछा था ?"

प्रश्न जरा विकट था। औरत कुछ समझ नहीं पा रही थी कि क्या दे, परन्तु उसे कुमार ने सिखला दिया था कि जब ऐसा कोई प्रश्न पूछा जाय तो "याद नहीं" कह देना चाहिए। उसके अनुसार बोली—"याद नहीं।"

मोहन—"पहिली मुलाकात में तुमने मुझसे यह नही कहा था न कि तुम धंधा करती हो ?"

औरत—"याद नही ।"

मोहन—"जब तुमसे तुम्हारे घर बातें कर रहा था, तब सामने वाले परदे से मुझे दो आदमी निकलते हुए दिखे थे, है न ?"

यह देखकर कि वह कोई जवाब नही दे रही थी मोहन ने पुन: डाँट कर पूछा—"दोनो पिस्तौल लिये थे । उन्हें देखते ही मैं उनकी तरफ बढ़ा, है न ?"

'हाँ' कहे या 'ना' इस मुश्किल मे वह पड गई थी । उसने सोचा इस प्रश्न मे कही पकड़ है । वह घबडा उठी और इसीलिए मदन के इशारे से 'हाँ' और 'ना' दोनों कहकर चुप ही रही । मोहन ने फिर डाँटकर पूछा—

"सच बताओ, दोनों आदमी तुम्हारे घर मे से पिस्तौल लिये मेरे सामने आये थे और उन्होंने मेरी तरफ अपनी पिस्तौलें तान दी थी। है न ?"

औरत—"हाँ ।"

मोहन—"केशवलाल से तुम्हारा संबंध था, है न ?"

वह 'नहीं था' कहना चाहती थी, परन्तु मुंह से अनजाने निकाल पड़ा "हाँ ।"

मोहन—"मुझे धोखा देकर तुम्हारे घर ले जाने के लिए मोटर में बैठे लोगों ने तुम्हें पकड़ने का सिर्फ ढोंग किया था—याने वे गुण्डे केशवलाल के पिट्ठू थे । यह सब केशवलाल के कहने पर ही किया गया था, है न ?"

पुन: उसे मुश्किल पड़ गई । पुन: उसने कुमार की ओर देखा और पुन: एक ही समय 'हाँ' और 'ना' उत्तर देकर वह चुप रही ।

मोहन—"दोनों पिस्तौल वाले परदे की आड़ से बाहर आये थे और जब उन्होंने अपनी पिस्तौलें मेरी ओर तानी तो अपने प्राणों की रक्षा

जनिक रूप से दे रहे थे। मोहन को इसका ज्ञान था। कुमार बेशक अंधकार में था। मोहन को यह ज्ञान था कि अपने बाप और अपनी माँ, इन दोनों के बीच यह स्पर्धा हो रही है। इस स्पर्धा में जीत किसकी होती है इसी पर धर्म और अधर्म तथा जय और पराजय निश्चित होगी। कुमार के प्रति उसके मन में द्वेष न था, उसी तरह प्रेम भी न था। परंतु माँ की जीत की अपेक्षा पिता की प्रतिष्ठा प्रस्थापित होने से मोहन के अभिमान की परिपूर्ति होने वाली थी। इसीलिए अपना बचाव करने की अपेक्षा कुमार की हेठी करने की ओर ही उसका ध्यान अधिक आकृष्ट हो गया था।

भीकू की गवाही शुरू हुई तो उसमें सभी बातें बाहर आई। अब मोहन आगे क्या करेगा, इस ओर सभी का ध्यान लग गया था। भीकू की गवाही से मोहन पर लगाए गए सारे अभियोग साबित हो गए थे। जब जिरह शुरू हुई तब मोहन ने भीकू से पहला ही प्रश्न पूछा—

"मृत्यु से पहिले तुम्हारी केशवलाल से अनबन हो गई थी?"

"नहीं।" भीकू ने जोर देकर कहा।

"अच्छा?"—मोहन हँसता हुआ बोला—"पहिले तुम केशवलाल से खूब पैसे ऐंठा करते थे। अभी कुछ दिनों से उसने तुम्हें पैसे देना बंद कर दिया था न?"

यह देखकर कि उसका दोष लोगों को मालूम हो जाएगा वह बोला, "यह झूठ है।"

"अच्छा, यह झूठ है?" मोहन उसकी आँख में आँख गाड़कर बोला— "फिर बैंक में तुम्हारे नाम जो रकम जमा है क्या वह तुम्हारे कपड़े की दुकान से ही तुम्हें प्राप्त हुई है?"

"बेशक!"

"फिर तुम्हारी दूकान पर कर्ज क्यों है? पैसे हैं, फिर कर्ज क्यों नहीं चुका देते? क्या दूकान के बही-खाते यहाँ लाकर उसमें दिखा सकते हो कि तुम्हारी दूकान से तुम्हें लाभ हो रहा है?"

भीकू घबड़ा गया। हिसाब के बही-खाते यदि अदालत में पेश होते तो सारी कलई खुल जाती।

"सीधा जवाब दो।"—मोहन ने डाँटकर पूछा—"तुमने केशवलाल से पैसे माँगे थे और उसने उन्हें देने से साफ इन्कार कर दिया था। है न?"

मोहन एक-एक प्रश्न पूछ रहा था और घबड़ाई हुई हालत में भीकू उसके सब प्रश्नों का जवाब 'हाँ' में दे रहा था।

"तो मतलब यह कि तुम्हारी और उसकी खूब जमकर ठनी?"

'हाँ।"

"वह तुम पर टूट पड़ा और तुम्हें मारने पर उतारू हो गया? उसने तुम्हें यह भी धमकी दी कि वह तुम्हारा खून कर देगा? है न?"

यथार्थ में यह बात हुई थी और मोहन को यह सब भीकू ने ही बताया था। मोहन की निगाह के वार के सामने झूठ बोलने की भीकू को हिम्मत नहीं हो रही थी। जब उसने 'हाँ' कहा तब मोहन बोला—"बोलो, फिर तुमने क्या किया?" मोहन उस पर प्रश्नों की झड़ी लगा रहा था। भीकू लगातार 'हाँ' और 'ना' कह रहा था। मोहन ने पूछा—"क्या तुमने उसे धमकी दी थी कि तुम पुलिस में उसकी रिपोर्ट करोगे?"

"हाँ।"

"फिर तुमने क्या किया?"

"कुछ नहीं किया। मैं भाग गया।"

"नहीं। तुम भागे नहीं थे। उल्टे तुम उस पर टूट पड़े थे। उसने तुम्हें एक घूँसा जमाया और तुम जमीन पर गिर पड़े थे। उसने तुम्हें फिर खूब पीटा। लातों से कुचला। बोलो, ऐसा ही हुआ था न?"

यह सब घटना सच थी इसीलिए घबराकर भीकू ने 'हाँ' कहा।

"इसका बदला लूँगा—ऐसा कहा था तुमने? कहा था न?"

"नहीं-नहीं।"

"नहीं बँमे ? बिल्कुल स्वाभाविक था यह ! मैं होता तो मैं भी यही कहता। किसी की सातें कोई क्यों बरदाश्त करेगा ? क्रोध के आवेश में तुमने ऐसा कह दिया था। कहा था कि मैं इसका बदला लूँगा। है न ?"

"हाँ।"

"तो बताओ तब तुमने क्या किया ?"—मोहन के इस प्रश्न से भीकू थरथर काँपने लगा। उस समय मोहन बोला—"फिर तुम मेरे पास आए थे न ? तुम्हीं ने मुझसे केशवलाल का खून करने के लिए कहा था न ?" यथार्थ बात यह नहीं थी। पर भीकू के मुंह से 'हाँ' निकल पड़ा। तब मोहन ने पूछा—"फिर मैंने तुमसे क्या कहा था ? बताओ, मैंने क्या कहा था ?"

"क्या कहा तुमने ?"

"मैंने यही कहा था न कि ऐसे कीड़े-मकोड़ों की मैं परवाह नहीं करता। फिर तुमने क्या किया ? मुझ से क्या कहा था ? यही कहा था न कि अच्छा, अच्छा, मैं खुद ही देख लूँगा। बोलो, कहा था न ?"

भीकू घबडा उठा था। मोहन इस तरह बोल रहा था कि भीकू को लगने लगा कि ऐसा ही हुआ होगा। मोहन की बौछार जारी थी—तुमने केशवलाल का खून करने के लिए कुछ गुंडे उसके पीछे लगा दिये थे। तुम उसे शरणगाँव ले गये थे। तुम्हीं ने उसे रास्ते में रोका था। गुंडे आए और उन्होंने केशवलाल का गला दबाकर उसे कन्दरा में फेंक दिया ? है न ?"

भीकू की घिग्घी बँध गई थी। वह घबराकर सिर्फ देखता रहा। मोहन के प्रश्नों की वर्षा हो रही थी—"बोलो, उसे कन्दरा में तुम्हारे द्वारा नियत किये गए गुंडों ने ही फेंका था न ?"

भीकू झट से 'हाँ' कह गया, पर फिर सावधान होकर बड़े जोर से चिल्लाकर बोला—"नहीं-नहीं, यह सब बनावटी है। मैं उस तरफ गया भी न था।"

"तो तुम शरणगाँव मे लौटते समय केशवलाल के साथ नहीं थे ?"

"नहीं ।"

"तुम अकेले ही बम्बई आने को रवाना हुए थे ?"

"हाँ।"

"तब तुमने यह कब देखा कि मैंने केशवलाल को गोली मारी ?"

भीकू के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। यह देख मोहन बोला—"यदि केशवलाल को गोली मारते तुम मुझे देख लेते, तो क्या मैं तुम्हें जिंदा छोड़ देता ?"

यह देखकर कि भीकू के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा है, मोहन ने जिरह बंद कर दी और अदालत की ओर मुड़कर बोला—"गवाह ने प्रत्येक शब्द अपने आप ही बदला है। अदालत को यह ध्यान मे रखना चाहिए, ऐसी मेरी प्रार्थना है।" कुमार की ओर मुड़कर वह फिर बोला—"देख लीजिए जनाब, यह है आपका सरकारी गवाह ! इसे आपने माफी दी है !"

उस दिन के लिए अदालत उठ गई। दूसरे दिन जो गवाह पेश हुए थे उनका कोई बड़ा महत्व नहीं था। भीकू से जिरह करने की कुमार ने कोशिश नहीं की। उसे भीकू पर शक हो गया था।

कुमार को स्वयं अपने पर भी शक हो गया था। कहीं निरपराधी मनुष्य को तो मैं अपराधी साबित नहीं कर रहा हूँ ? गवाहियाँ सब ठीक थीं, पर मोहन अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर उन सब गवाहियों की धज्जियाँ उड़ा रहा था। कुमार को लगा, इतनी असाधारण बुद्धिमत्ता हुए बिना क्या कोई इतने भयंकर गुनाह करके अपने को निरपराधी सिद्ध करके साफ छूट जा सकता है ? उसे गीता मे भगवान द्वारा कहा गया वाक्य—'शठों का शाठ्य मैं हूँ—"याद हो आया। क्या यह दैवी शाठ्य है ? दुर्जनता में जो असाधारणता होती है क्या वह दैवी है ?

कुमार भौचक्का हो गया। क्या करे, उसे सूझ नहीं पड़ रहा था।

मोहन अपने बचाव का भाषण करने के लिए खड़ा हुआ तो बताया कि सरकारी गवाहों की गवाहियाँ कितनी झूठी थीं—"हर गवाह बनाया हुआ है। जिरह में हर गवाह की पोल खुल चुकी है। मेरी जिरह से यह सिद्ध हो गया है कि केशवलाल को धमकी भीकू ने ही दी थी। अपना निजी बदला लेने के लिए भीकू ने ही हत्यारे भेजकर केशवलाल का खून कराया और उस आरोप को मुझ पर लगाने के लिए उसने पुलिस में खबर दी। बनावटी गवाह की सारी जिम्मेवारी भीकू पर है। उसने अपने बचाव के लिए पुलिस को झूठी बातें बनाकर मुझे फाँसी पर चढ़ाने का षड्यन्त्र रचा है। जिस समय केशवलाल का खून हुआ उस समय मेरा वहाँ हाजिर होना संभव ही नहीं था। मैं उस समय केशवलाल के खून के स्थान से कितने ही मील दूर था।"

कुमार ने पूछा—"फिर 'अलिबी' साबित क्यों नहीं करते?"

मोहन बोला—"मैं उस समय अपनी माँ से मिलने गया था।"

"फिर अपने गवाह की हैसियत से तुमने अपनी माँ को अदालत में क्यों नहीं पेश किया?"

"मैं पेश करता"—मोहन बोला—"पर मुझे उसके मन का ख्याल करना चाहिए। उसके सामाजिक दर्जे पर ध्यान देना चाहिए। सारे भारत में उसका नाम रोशन है। ऐसे मुकदमे में उसका कोई सम्बन्ध न आए—यही अच्छा है।"

"यह सब तुम्हारी चालबाजी है।"

"अपनी माँ का नाम बताऊँ ? सुनोगे ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं सुनूँगा ? उसमें कौन-सी बड़ी बात है ?"

"तो सुनो—" कुमार की आँखों में आँखें डालकर अत्यन्त गम्भीरता से वह बोला, "उसका नाम है दुर्गाबाई—शरणगाँव की दुर्गाबाई।"

"झूठ ! बिलकुल झूठ !"—कुमार चिल्ला पड़ा।

"उसी से पूछ लो।"मोहन बोला—"वह झूठ नहीं बोलेगी। उसे अदालत में बुलाओ।"

कुमार बेचैन हो उठा। उसके सामने प्रश्न खड़ा हुआ—मेरी माँ, मोहन की माँ ! नामों में बहुत समानता हुआ करती है इसलिए उसे यह कल्पना नहीं थी। मोहन नाम का उसका एक भाई उसके जन्म से पहले घर से फरार हो गया था, यह वह जानता था। क्या वह मोहन यही है ? क्या यह है वह मेरा भाई ? उसका दिमाग घूमने लगा। उसके सारे शरीर में कँपकँपी दौड़ गई। वह मँजा हुआ वकील नहीं था। उसकी भावना पर आघात हो गया था। एकदम बेहोश होकर वह गिर पड़ा।

इधर-उधर दौड़धूप शुरू हो गई। अदालत का काम उस दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। कम-से-कम उस समय तक के लिए तो मोहन की जीत हो गई थी। आम जनता की पहले से उसके प्रति सहानुभूति थी ही, परन्तु अब तो उसने कमाल कर दिया था। सभी उसकी प्रशंसा करने लगे थे। विजयी वीर के ठाट से मोहन उस दिन जेल लौटा।

मुकदमे का वर्णन पढ़ने के लिए सारी बम्बई यद्यपि टूट पड़ती थी, पर दुर्गाबाई ने इस मामले की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। कुमार एक बड़े मुकदमे की पैरवी कर रहा है, उसमें उसकी बुद्धि कसौटी पर कसी जा रही है, इतनी ही बात उसके कानों में पड़ रही थी। कुमार की कीर्ति फैल रही थी, इस पर उसे अभिमान था। उस अभिमान के समाधान में वह आनन्द के शिखर पर बैठी हुई थी। उसे लग रहा था कि जीवन में उसने जो कष्ट उठाये थे, उनका परिमार्जन हो गया। ईश्वर को वह धन्यवाद दे रही थी। उसे लग रहा था, ईश्वर के घर न्याय है।

उस न्याय को प्राप्त करने में शायद देर लगती हो, पर कभी-न कभी वह न्याय मिलकर ही रहता है। वह न्याय मुझे अब मिला है। इसीलिए आज मेरा कुमार उच्च पद पर आसीन है।

नित्य की भाँति वह देवघर में बैठी पूजा समाप्त करके भगवान को धन्यवाद दे रही थी, तभी कुमार आ पहुँचा। उसकी मुद्रा देखकर दुर्गाबाई को बड़ा अजीब-सा लगा। उसका चेहरा बिल्कुल उतर गया था। भयंकर संकट आ पड़ने पर बड़ी-से बड़ी हिम्मत वाला मनुष्य भी जब उसके कारण बिल्कुल पिस जाता है और उस परिस्थिति में जिस प्रकार की विपण्णता की छाया उसके चेहरे पर छा उठती है उसी तरह कुमार का उतरा हुआ चेहरा देखकर वह बोली—"क्या हुआ कुमार ?"

कुमार के मुँह से शब्द निकलना भी कठिन हो रहा था। मन को पक्का करके वह एक-एक शब्द बड़े कष्ट से कह रहा था—"एक बात कहना चाहता हूँ, उसी तरह एक बात भी पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो।"—दुर्गाबाई का कलेजा धक-धक करने लगा था।

कुमार बोला—"तुम जानती हो कि आज चार दिन से मैं एक बड़े मुकदमे की पैरवी कर रहा हूँ। पिछले छः महीनों से जिस अपराधी को पकड़ने के लिए हमने आकाश-पाताल एक कर दिया था और जिसे हमने अन्त में पकड़ लिया, उसका यह मुकदमा है।" एक क्षण के लिए रुककर वह बोला—"यह अपराधी कौन है, तुम जानती हो माँ?" उसके गर्दन के इशारे से 'ना' कहने पर वह बोला—"तो सुनो! पहिले कलेजा पत्थर का कर लो। वह अपराधी मोहन है—तुम्हारा बेटा—मेरा भाई—"

दुर्गाबाई स्तम्भित हो गई। वह अपने आप ही बुदबुदा उठी—"मोहन! मेरा मोहन! मेरी पहिली कोख।"

"हाँ!" कुमार बोला—"इसीलिए पूछता हूँ। सब गवाहियाँ हो चुकी हैं। जुर्म साबित हो चुका है। सिर्फ बहस भर बाकी है। उसे

जिन्दा रखना या फाँसी पर चढा देना मेरे हाथ मे है—इसीलिए पूछना चाहता हूँ—बताओ माँ, मैं क्या करूँ ?"

इस समय तक दुर्गाबाई प्रकृतस्थ हो गई थी। क्षण-भर के लिए खो गया हुआ उसके मन पर का कब्जा फिर लौट आया था। वह गम्भीर स्वर मे बोली—"तुम्हारा क्या विचार है ?"

कुमार उतना ही गम्भीर होकर बोला—"मेरा ख्याल है कि वह गुनहगार है। उसने अत्याचार किये हैं, लोगो को लूटा है, लोगो के प्राण लिये हैं। दुर्जन होने के लिए जितने कुकर्म करने चाहिए वे सब कुकर्म उसने किये हैं। उसे फाँसी की सजा दिलाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। परन्तु खून का रिश्ता⋯"

"तुम्हारे आगे आता है ?" दुर्गाबाई ने पूछा—"यही न ! तुम्हारे हृदय मे कुरुक्षेत्र जाग उठा है, वह युद्ध-भूमि तुम्हे दिखने लगी है। है न? फिर वहाँ के भगवान का उपदेश भी तुम्हारे कानो मे क्यो नही पड रहा है ? वह युद्ध शुरू हुआ तभी तो भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया था। इसीलिए तो भगवान ने उसे गीता सुनाई थी। अठारह वर्ष तक मैं तुम्हे वह गीता पढाती रही। दो साल विलायत मे रहकर क्या तुम उसे भूल गये ?"

"नही माँ"—कुमार बोला—"मैं भूला नही। सिर्फ तुमसे पूछने आया हूँ कि मैं क्या करूँ ? क्या भाई को फाँसी पर चढ़वा दूँ ?" क्षण-भर के लिए वह चुप रहा। यह देखकर कि दुर्गाबाई कोई उत्तर नही दे रही है, उसने फिर पूछा—"माँ, बताओ न, मैं क्या करूँ ?"

दुर्गाबाई का मुख-मण्डल इस समय दैवी तेज से चमक रहा था। सासारिक भावनाओ की सीमा को पार कर वह दैवी-भावना से एकरूप हो गई थी। इंसान के भीतर का भगवान जाग उठा था—वह अब मानवी नहीं रही थी। कुमार की ओर तनिक भी न देख वह बोली—"क्या करूँ—क्या करूँ, यह किससे पूछ रहे हो, कुमार ! अपने हृदयस्थ ईश्वर से पूछो। भगवान ने अर्जुन से क्या कहा था ? माँ, बाप, भाई,

हिन, सगे-सबन्धी, ये सब माने ताक पर रखकर अपना कर्त्तव्य पालन करो। यही कहा था न वासुदेव ने अर्जुन से ? कुमार ! तुम्हारा धर्म तुम्हें आज्ञा देता है·········"

"माँ !" घबडाकर कुमार चिल्ला उठा।

"हाँ-हाँ।" दृढ़ निश्चय की वाणी में दुर्गाबाई बोली—"तुम्हारा धर्म तुम्हें आज्ञा दे चुका है। अब सोचने का समय नहीं। कर्म और अकर्म का भार क्यों ढोते हो अपने सिर पर ? उसे सजा होगी ही। ईश्वर सजा दे चुका है उसे। तुम केवल निमित्त-मात्र बनो। धर्म के मार्ग पर तुम खड़े हो। वहाँ से रत्ती-भर न हटना। समझे ! उसकी मौत ही हजारों की जिंदगी है—हजारों का सुख है—लाखों की शान्ति है। उसकी मौत ही करोड़ों जीवों का उद्धार है। जाओ। 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् धर्मसंस्थापनार्थाय' ईश्वर रोज अवतार लेता है। वही तुम हो—' ईश्वर के प्रतिनिधि हो। इसलिए जाओ—ईश्वर का कार्य करो – जाओ !"

वह निस्तब्ध हो गई। उसके उद्गार सुनकर कुमार का हृदय थर्रा उठा। उसके हृदय में नयी शक्ति का सचार हुआ। नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा, इसलिए वह अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए निकल पड़ा।

कितनी ही देर तक दुर्गाबाई निस्तब्ध ही बैठी थी। होश में आई तो देखा कुमार चला गया था। यह देखते ही कि वह चल दिया, उसका कलेजा धक्-सा हो गया। उसे लगा, यह क्या कर डाला मैंने ? यह जागृति क्यों ? क्या जागृति में जीव-हत्या होती है ? या कि जागृति को निद्रा है ?······इस निद्रा में— इस नशे में क्या कुमार अपने भाई का खून कर देगा ? क्या होगा ? खून या सजा ?" वह भगवान की मूर्ति के [illegible] जाकर बैठी। गीता गाकर गिड़गिड़ाहट के स्वर में वह बोली—[illegible] किया यह भगवन् ? जन्म-भर तुम्हारी सेवा की। क्या उसका यही [illegible] है ? मेरे बेटे का यह कैसा अन्त ? गीता की शिक्षा का परि[illegible] क्या यही है कि मेरा एक हाथ मेरे ही दूसरे हाथ को काटकर फेंक

रे ! भाई, भाई का हत्यारा हो जाए ?" उसके हृदय में भयकर खलबली मच गई थी—वह उसी तरह भगवान् से प्रार्थना करती रही। "परित्राणाय साधूनां" मेरा बेटा मेरे को ही मार रहा है। "विनाशाय च दुष्कृताम्" एक भाई अपने ही भाई के प्राण ले रहा है ! "धर्मसंस्थापनार्थाय" एक माँ अपने ही पेट के गोले का खून करने के लिए अपने ही पेट के दूसरे गोले को भेज रही है। क्या किया यह देव —क्या किया ? नहीं-नहीं—यह मैं कैसे सहन करूँ ?

उद्वेग के समय मन को शांति देने के लिए एक ही साधन उसके हाथ में था। वह चरखा लेकर बैठ गई। वह जोर-जोर से सूत कातने लगी। चारों दिशाओं से गीता का श्लोक उसके कानों में पड़ रहा था—

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

इस श्लोक की दुन्दभी के निनाद ने उसके सारे शरीर को झकझोर डाला। भगवान् का वह वाक्य उसकी नस-नस में समाकर उसे जगा रहा था। उस मन स्थिति में वह अदृश्य ध्वनि उसे दुस्सह हो उठी। दौड़कर उसने कमरे का द्वार बन्द कर लिया।

बाहर का द्वार बन्द कर दिया—पर हृदय का द्वार खुला था। उस खुले द्वार में गीताकार प्रत्यक्ष रूप से खड़े हैं, इसका उसे ज्ञान था। इसी समय उसके कानों में शब्द पड़े—"द्वार खोलो, माँ मुझे भीतर आने दो—एक बार मेरी सुन तो लो। मैं सुन्दरी हूँ। तुमसे मिलने आई हूँ।"

"सुन्दरी !" दुर्गाबाई बोली।

"हाँ, माँ !"—सुन्दरी द्वार के बाहर से बोली "कम-से-कम मेरा एक शब्द तो सुन लो। अपना ये द्वार को मेरी आँखों के सामने यूँ बन्द मत करो। एक क्षण—सिर्फ एक क्षण के लिए मुझे भीतर ले लो।"

"जाओ सुन्दरी !"—भटके हुए मन को नियंत्रित करती हुई दुर्गाबाई बोली—"जैसी हो वैसी ही लौट जाओ। जिन्दगी भर मैंने कौन सी कोशिश की—इस संसार-सागर को पार करने का प्रयत्न किया—अनी-

अभी ही मुझे किनारा दिया है—नहीं, मैं किनारे पर पहुँच ही
—मेरी किनारे से लगी नौका को यूँ डुबाओ नहीं।"

"मैं तुम्हारी नौका डुबाने नहीं आई हूँ।"—सुन्दरी बड़ी आ
से बोली—"पर मेरे जीवन की नौका कैसे तरेगी यह मुझे देखन
समाज के द्वारा त्याज्य् जिन्दगी से ऊब गई हुई, भगवान द्वारा दि
शरीर और मन को बाजार में बेचकर बैठी हुई—जलकर-सड़कर
भले ही हो गई होऊँ – फिर भी मेरा कलेजा स्त्री का ही है, माँ

"यह मैं जानती हूँ, सुन्दरी ! मैं सब समझती हूँ। तुम सिर्फ
हो, पर मैं स्त्री भी हूँ और माँ भी। दो-दो आँखों से मुझे देखना
है—दो-दो हृदयों से मुझे रोना पड़ता है—पर मेरा धर्म !······"

"आपका धर्म !" भीतर से आ रही लता बोली—"दूसरे के
दिल को आग लगा देना ही क्या आपका धर्म है ? भीख माँगने
की झोली में राख डालना ही क्या आपकी नीति है ?"

दोनों के प्रहारों के बीच बेचारी दुर्गाबाई फँस गई थी। लता
अब सारा हाल मालूम हो चुका था। कुमार अपने भाई को का
पालन के लिए फाँसी पर झुलाएगा, इसकी अपेक्षा कुमार के कारण सु
का प्रेम मौत के घाट उतरेगा यह कल्पना उसे अधिक असहनीय हो उठी
सुन्दरी उसकी बहिन है इसका ज्ञान उसे न था। उसे सिर्फ यही ि
रहा था कि एक प्रेमी जीव की घुटन हो रही है। अपनी ही जाति
प्रति प्यार से—भूतदया से प्रेरित होकर लता बोली—"आप मां
न ? आपके शब्दों में शक्ति है। आपके एक शब्द से आपका बेटा अ
इसका प्रेमी – आपके बेटे का सहोदर, जीवित रह सकता है।"

"पगली हो तुम बेटी !" दुर्गाबाई बोली—"पाप की उस दलद
का दुनिया में क्या जिन्दा रहना और क्या मर जाना, दोनों ही बरा
है। अपने पुत्र को जिन्दा रखने के लिए इसके प्रेमी को बचाने के ि
—सहोदर की ममता में मन को धोखा देकर उसे अनीति का मार्ग क
खुला छोड़ दूँ ? एक तो पहिले से ही पाप की खाई में चला गया है

अभी ही मुझे किनारा दिखा
—मेरी किनारे से लगी
"मैं तुम्हारी
से बोली—
समा

२६

कुमार मोहन के मुकदमे मे आखिरी बहस करने लगा। पहिले उस ने पूरे मुकदमे का संक्षिप्त विवरण पेश किया। फिर विस्तारपूर्वक यह बताया कि भिन्न भिन्न आरोप किस-किस प्रकार से साबित हुए हैं। उसने यह भी बताया कि सिर्फ अपनी डांट-डपट से और अपनी एक विशेष प्रकार की 'पर्सनैलिटि' के कारण गवाहों को घबड़ा देने मे मोहन किस तरह सफल हुआ। इसके बावजूद गवाहों ने अपने पहले बयानों में जो कहा है, उसे ही हमें क्यों स्वीकार करना चाहिए, इसकी भी उसने साधार और युक्तिसंगत छानबीन की।

बिल्कुल अन्त मे वह बोला—"आज एक भाई अपने ही दूसरे भाई का हत्यारा हो रहा है। आपके सामने जो सबूत पेश है उन्हें देखकर आपने जो भी निष्कर्ष निकाले होंगे, वे तो आप निकाल ही चुके हैं। पर उन की अपेक्षा भी एक बड़ा सबूत मुझे आपके सामने रखना है। अभियुक्त के बचाव के भाषण से कल ही पहिली बार मुझे पता चला कि जो उसकी माँ है वही मेरी माँ है। उससे मेरी कोई दुश्मनी नहीं। बचपन मे ही हम एक दूसरे से अलग हो गये थे। कल ही मैंने जाना कि ... मेरा सगा बड़ा भाई है। क्या आप यह यह नहीं सोचते कि बर्षों से फरार हुए अपने इस भाई के दर्शन से मेरा हृदय पसीज गया ? ऊपरी तौर पर सबूतों मे जो गड़बड़ी हो गई है उसकी ओर ध्यान न दीजिए। मेरे इस कहने पर भी आप ख्याल न कीजिए। नाता होते हुए भी मैं कहता हूँ कि बरसों से बम्बई में भयंकर जुर्म

करनेवाले इस मँजे हुए गुनहगार को फाँसी की सजा ही मिलनी चाहिए। कुमार की यह बात सुनकर ज्यूरी जज और दर्शक सभी चकित हो गए। वह अब कौन-सी मुख्य बात उपस्थित करेगा इस ओर सबका ध्यान लगा हुआ था। "मैं कह चुका हूँ कि अभियुक्त मेरा सगा भाई है। इस खून के रिश्ते के बावजूद मैं उसके लिए फाँसी की सजा की सिफारिश क्यों कर रहा हूँ? न्याय के मंदिर मे नाते-रिश्ते का प्रश्न ही नहीं उठता। माया-ममता की परवाह नहीं की जाती। यह सज्जनों की रक्षा का प्रश्न है। क्योंकि न्याय देवी अपना-पराया नहीं देखती, इसे आप लोग न भूलें। महाभारत युद्ध मे श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि सज्जनों की रक्षा करने के लिए पाप का संहार करने के लिए, भाई-बंधो के नातों का भी मत देखो। भगवान के उस वाक्य पर ही हमारी हिंदू संस्कृति आधारित है। हजारों वर्षों का इतिहास भगवद्गीता के इस तत्वज्ञान पर आधारित रहा है। दुष्कर्मों का विनाश करने के लिए जिस अर्जुन ने अपने भाई-बंधो का नाश किया, उसी अर्जुन का मैं एक वंशज हूँ। इसीलिए मैं कहता हूँ—उस गीताकार का मैं एक प्रतिनिधि हूँ—इसीलिए आप से प्रार्थना करता हूँ कि इस दुनिया से पाप के बीज को नष्ट करने के लिए इस अभियुक्त को आप गुनहगार ही सिद्ध कीजिए। ऐसे भयंकर गुनहगार को यदि हम दुनिया में रहने दें तो आम जनता के जान-माल को हमेशा बड़ा खतरा है और हम जानबूझकर यह खतरा आम जनता के सिर पर लाद रहे हैं ऐसा ही इसका मतलब निकलेगा। इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।" इतना कहकर कुमार ने अपना स्थान ग्रहण किया। ज्यूरी के विधर्मी सदस्य भी गर्दनें हिला रहे थे।

ज्यूरी के सदस्य विचार-विमर्श करने के लिए अपने कमरे में चले गए। जज का फैसला तैयार था। जब वह सुनाया जाने लगा तब उससे पहिले मोहन ने कुछ कहने की जज से इजाजत मांगी। वह उसे दे दी गई। मोहन बोला - "ज्यूरी ने मुझे गुनहगार ठहरा दिया है। अब मैं क्या बोल सकता हूँ? मुझे न्यायालय के सामने खड़ा किया गया है। पर

बाहर सड़क के किनारे कुछ खाली मोटरें खड़ी थीं। उनमें से एक में सवार होकर उसके ड्राइवर को बाहर फेंक, वह भाग खड़ा हुआ। इसी समय पुलिस वालों ने भी उसका पीछा करना शुरू कर दिया। दोनों तेज रफ्तार से अपनी-अपनी मोटरें चला रहे थे। चूँकि आम सड़क थी और आसपास लोग थे इसलिए पुलिस गोलियाँ नहीं दाग सकती थी। सिर्फ पीछा किये जा रही थी। जो रास्ता खाली मिलता उसी से मोहन अपनी गाड़ी दौड़ा देता था। उसने जान हथेली में ले ली थी। दुर्घटना का उसे भय ही नहीं लगता था। जब वह मालाबार हिल के निर्जन रास्ते पर पहुँचा, तब पुलिस वालों ने उस पर गोलियाँ दागना शुरू कर दिया। उसे दो-तीन गोलियाँ लगीं। वह खूनाखून हो गया। फिर भी उसका हाथ स्टेरिंग व्हील से न छूटा। उसी स्थिति में वह तेज रफ्तार से मोटर चलाये जा रहा था।

जेल से निकलने के बाद से माँ के वे शब्द उसके कानों में लगातार गूँज रहे थे जो उसने शरणगाँव में उसके मुँह से सुने थे—"किसी से भी मत डर—भगवान को याद कर!" उन शब्दों ने उसकी नाक में दम कर दिया था।

इधर पुलिस पीछा कर रही थी और उधर माँ के उन शब्दों का कोलाहल उसे असह्य हो उठा था। रास्ते में मोड़ आते ही उसने सामने के अहाते में गाड़ी घुमेड़ दी। गाड़ी उस बंगले की सीढ़ियों से टकरा कर उलट पड़ी। गाड़ी से बाहर निकलकर बड़े कष्ट से वह सीढ़ियों तक गया। उस समय मोटर उलटने की आवाज सुनकर, घबड़ा गये हुए उस बँगले के लोग एकदम बाहर आए।

वह कुमार का ही बँगला था। सीढ़ियों पर खून से लथपथ पड़े हुए मोहन को दुर्गाबाई ने पहचान लिया। उसका मस्तक उठाकर अपनी गोद में लेकर वह बोली—"कौन? मोहन! मोहन आ गया?"

"हाँ माँ—" मोहन होश में आकर बोला—"जेल की दीवार कूद कर आया हूँ। मेरी ओर देखो। पुलिस मेरे पीछे लगी है। एक-दो